योगविद्या

वर्ष 4 अंक 8
अगस्त 2015
सदस्यता डाकखर्च – रु 100

बिहार योग विद्यालय, मुंगेर, बिहार, भारत

हरिः ॐ

योग विद्या का सम्पादन, मुद्रण और प्रकाशन स्वामी सत्यानन्द सरस्वती के संन्यासी शिष्यों द्वारा स्वास्थ्य लाभ, आनन्द और प्रकाश प्राप्ति के इच्छुक व्यक्तियों के लिए किया जाता है। इसमें बिहार योग विद्यालय, बिहार योग भारती, योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट तथा योग शोध संस्थान के क्रियाकलापों की जानकारियाँ प्रकाशित की जाती हैं।

सम्पादक – स्वामी शक्तिमित्रानन्द सरस्वती

योग विद्या मासिक पत्रिका है। देर से सदस्यता ग्रहण करने पर भी उस वर्ष के जनवरी से दिसम्बर तक के सभी अंक भेजे जाते हैं।

बिहार योग विद्यालय, गंगादर्शन, फोर्ट, मुंगेर, 811201, बिहार, द्वारा प्रकाशित।

थॉमसन प्रेस इण्डिया लिमिटेड, फरीदाबाद, 121007, हरियाणा में मुद्रित।

© Bihar School of Yoga 2015

पत्रिका की सदस्यता एक वर्ष के लिए पंजीकृत की जाती है। कृपया अपने आवेदन अथवा अन्य पत्राचार निम्नलिखित पते पर करें –

बिहार योग विद्यालय
गंगा दर्शन,
फोर्ट, मुंगेर, 811201
बिहार

✉ अन्य किसी जानकारी हेतु स्वयं का पता लिखा और डाक टिकट लगा हुआ लिफाफा भेजें, जिसके बिना उत्तर नहीं दिया जायेगा।

कुल पृष्ठ संख्या : 58 *(कवर पृष्ठों सहित)*

कवर फोटो : स्वामी निरंजनानन्द सरस्वती, कोलकाता, 2014

अन्दर के रंगीन फोटो : 1-4: स्वामी निरंजनानन्द सरस्वती की कोलकाता योग यात्रा, 2014

आध्यात्मिक मार्गदर्शन

कौन बलवान्?

मनोवेग बलवान् है, परन्तु विवेक उससे अधिक बलशाली है। अतएव यह मनोवेग को नियन्त्रित कर सकता है।

क्रोध बलवान् है, लेकिन प्रेम उससे अधिक शक्तिशाली है। अतः यह क्रोध को नियन्त्रित कर सकता है।

जिह्वा बलवान् है, परन्तु बुद्धि अधिक शक्तिशाली है। इसलिए यह जिह्वा को नियन्त्रित कर सकती है।

विवेक, प्रेम एवं सद्बुद्धि को विकसित करो और आत्म-साक्षात्कार प्राप्त करो।

– श्री स्वामी शिवानन्द सरस्वती

बिहार योग विद्यालय, गंगादर्शन, फोर्ट, मुंगेर – 811201, बिहार के लिए स्वामी ज्ञानभिक्षु सरस्वती द्वारा प्रकाशित एवं मुद्रित
मुद्रक – थॉमसन प्रेस इण्डिया लिमिटेड, 18/35 माइलस्टोन, दिल्ली मथुरा रोड, फरीदाबाद – 121007, हरियाणा
स्वामित्व – बिहार योग विद्यालय **सम्पादक** – स्वामी शक्तिमित्रानन्द सरस्वती

योगविद्या

वर्ष 4 अंक 8 · अगस्त 2015
(प्रकाशन का 53 वाँ वर्ष)

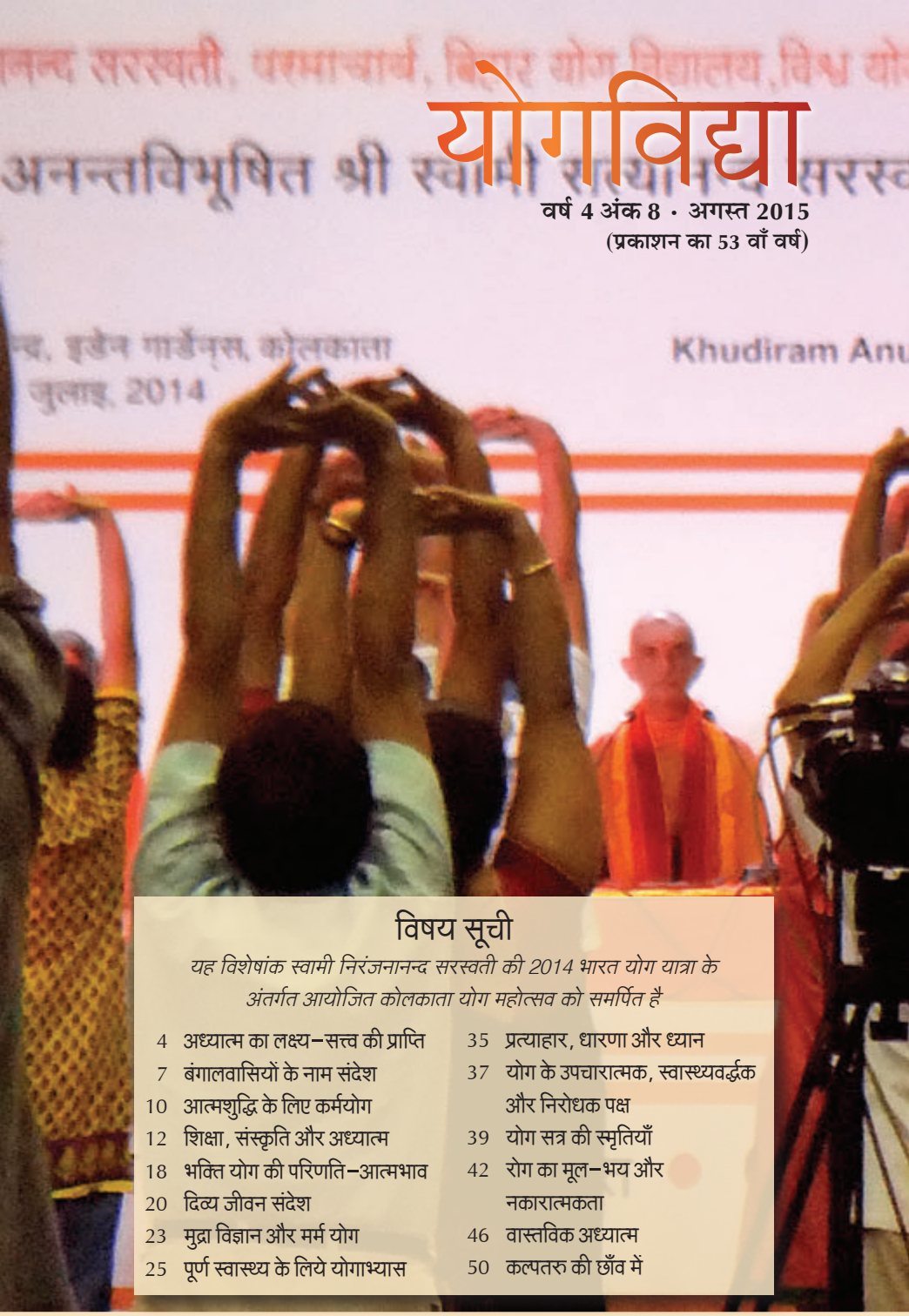

विषय सूची

यह विशेषांक स्वामी निरंजनानन्द सरस्वती की 2014 भारत योग यात्रा के अंतर्गत आयोजित कोलकाता योग महोत्सव को समर्पित है

4 अध्यात्म का लक्ष्य–सत्त्व की प्राप्ति
7 बंगालवासियों के नाम संदेश
10 आत्मशुद्धि के लिए कर्मयोग
12 शिक्षा, संस्कृति और अध्यात्म
18 भक्ति योग की परिणति–आत्मभाव
20 दिव्य जीवन संदेश
23 मुद्रा विज्ञान और मर्म योग
25 पूर्ण स्वास्थ्य के लिये योगाभ्यास
35 प्रत्याहार, धारणा और ध्यान
37 योग के उपचारात्मक, स्वास्थ्यवर्द्धक और निरोधक पक्ष
39 योग सत्र की स्मृतियाँ
42 रोग का मूल–भय और नकारात्मकता
46 वास्तविक अध्यात्म
50 कल्पतरु की छाँव में

तपस्विभ्योऽधिको योगी ज्ञानिभ्योऽपि मतोऽधिक:। कर्मिभ्यश्चाधिको योगी तस्माद्योगी भवार्जुन ॥

अध्यात्म का लक्ष्य–सत्त्व की प्राप्ति

स्वामी निरंजनानन्द सरस्वती

आध्यात्मिक यात्रा का उद्देश्य जीवन में सत्त्व की अवस्था को प्राप्त करना है। साधकों को आध्यात्मिक मार्ग में तीन अवस्थाओं से गुजरना पड़ता है। पहली है तामसिक अवस्था जिसमें एक स्थिति, आकार और सीमा का अनुभव होता है, दूसरी है राजसिक अवस्था जिसमें क्रिया और गति की अनुभूति होती है और तीसरी है सात्त्विक अवस्था जिसमें प्रकाश का अनुभव होता है।

संसार की यात्रा सत्त्व से तमस् की ओर होती है। यहाँ पर तमस् का कोई नकारात्कमक अर्थ नहीं, बल्कि यहाँ इसका अर्थ है एक निश्चित आकार, स्थिति या सीमा। जैसे मिट्टी से बर्तन बनाने की प्रक्रिया। जब मिट्टी को धरती से लिया जाता है तब तक इसका न कोई रूप होता है, न कोई आकार। मिट्टी की यह आकार रहित स्थिति सत्त्व की अवस्था है। लेकिन जब उस मिट्टी में पानी मिलाते हैं और उसको गूँथते हैं, तब उस मिट्टी में क्रिया आरम्भ हो जाती है, और यह रजस् की अवस्था है। जब आप उस मिट्टी से एक पात्र तैयार कर देते हैं, उसे एक निश्चित आकार प्रदान कर देते हैं, तब वह तमस् की अवस्था है। यहाँ पर यह जो मेज़ है, वह तमोगुण की अवस्था में है क्योंकि उसने आकार को प्राप्त किया है। लेकिन जब वह लकड़ी के टुकड़ों के रूप में बढ़ई के हाथ में था तब वह रजोगुण की अवस्था में था। और उससे पहले जब लकड़ी किसी पेड़ का हिस्सा थी तब वह सत्त्वगुण की अवस्था थी। ये उदाहरण एक प्रक्रिया को दर्शाते हैं जो सत्त्व से तमस् की ओर हो रही है।

इसके विपरीत अध्यात्म की यात्रा तमस् से सत्त्व की ओर होती है। अब आप लोग बतलाइये कि दोनों में समझौता कैसे होगा! सत्त्व से तमस् की यात्रा हो रही है उत्तर से दक्षिण तक। तमस् से सत्त्व की यात्रा हो रही है दक्षिण से उत्तर तक। आप किस दिशा में जाएँगे? वहीं पहले जायेंगे जहाँ पर आपको फायदा होगा। अगर संसार में फायदा होगा तो संसार की ओर पहले जायेंगे, और अगर सत्त्व के प्रकाश में ज्यादा फायदा होगा तो आप प्रकाश की ओर जायेंगे। स्वाभाविक है कि जहाँ पर जिसको ज्यादा फायदा प्रतीत होगा वह उस ओर प्रस्थान करेगा।

आप लोग भी तो योग में फायदे का अंदाज लेकर आते हो न! अगर आपको लगेगा कि योग से फायदा नहीं होगा तो आप योग की ओर आओगे भी नहीं। मनुष्य का स्वभाव हमेशा व्यापार का रहता है। संसार के साथ भी उसका व्यापार होता है और ईश्वर के साथ भी। मनुष्य चाहता है कि उसके दोनों हाथों में लड्डू रहे। संसार का भी लड्डू हाथ में रहे और परमार्थ का भी। यहीं पर जीवन में विरोधाभास होता

है। आपकी यात्रा सत्त्व से तमस् की ओर हो या तमस् से सत्त्व की ओर, आपको एक दिशा का तो चुनाव करना ही पड़ेगा। आपको एक ओर अपनी पीठ दिखानी ही पड़ेगी और एक ओर आपका मुँह दिखेगा ही।

जिस तरफ आपने पीठ दिखा दी है, उससे फिर क्या नाता, क्या रिश्ता, क्या सम्बन्ध? जो व्यक्ति संसार में आसक्त है, उसके लिये ईश्वर का अस्तित्व नहीं होता क्योंकि उसने ईश्वर को पीठ दिखाई हुई है, संसार ही उसके लिये सत्य है। और जो व्यक्ति संसार को पीठ दिखाकर ईश्वर की ओर, गुरु की ओर देख रहा है, उसके लिये संसार असत्य है। ईश्वर तथा गुरु ही सत्य हैं। प्रश्न उठता है कि हम यात्रा करें तो किधर करें?

यहाँ पर योग कहता है कि तुम जहाँ पर हो, वहीं पर ठहर जाओ और एक बार सोच-विचार करके, चिन्तन करके निर्णय करो कि तुम्हारे जीवन का उद्देश्य क्या है? इस द्वंद्व का समाधान राजयोग में मिलता है जो मन को संभालने का तरीका है। उपरोक्त स्थितियाँ मन से ही संबंधित हैं और हमारे शास्त्रों के अनुसार मन की स्थिति प्रारंभ से ही तामसिक होती है।

मन के तामसिक होने का कारण है मन के छ: मित्र। ये जन्म से आपके साथ रहते हैं और आपके चरित्र, व्यक्तित्व और मानसिकता का निर्माण करते हैं, आपके जीवन के विकास-क्रम में सहायक होते हैं। मन के ये छ: साथी हैं–काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद और मात्सर्य। छोटी उम्र से बच्चों के मन में लालसा होने लगती है, वे अपनी इच्छाओं के प्रति सजग होने लगते हैं कि मैं इस वस्तु को, इस खिलौने को, इस खाद्यपदार्थ को चाहता हूँ और मुझे इन्हें प्राप्त करना है। बच्चों में ये भावनाएँ कहाँ से आती हैं? बच्चों को जब बाहर का कोई ज्ञान नहीं भी होता, तब भी इन मित्रों के कारण उनके मन में अनेक तरह की इच्छाएँ पनपती हैं, जैसे चॉकलेट खाने की इच्छा, खिलौनों के साथ खेलने की इच्छा इत्यादि। इस प्रकार, अपने मन के इन छ: मित्रों के कारण वे अपने जीवन में कार्य करने में सक्षम हो पाते हैं। अगर उनकी इच्छाओं की पूर्ति नहीं होती तो वे क्रोध करते हैं, चिड़चिड़ातें हैं, चेहरा बनाते हैं, रोते हैं। अगर किसी दूसरे के हाथ में मिठाई देख ली तो ईर्ष्या करते हैं। बच्चे यह सब कहाँ से सीखते हैं? ये तो उनके मन की सहज, स्वाभाविक अभिव्यक्तियाँ होती हैं जो उनके भविष्य जीवन का निर्माण करती हैं।

ये छ: मित्र मध्यावस्था में छ: विकार के रूप में दिखलाई देते हैं। इनके कारण जीवन में तनाव, द्वंद, संशय और कुण्ठा जैसी अनेक तरह की समस्याएँ उत्पन्न होती हैं। इस प्रकार ये छ: मित्र बाल्य और युवा अवस्था में हमारे साथी, मध्य आयु में हमारे विकार और बुढ़ापे में हमारे शत्रु बन जाते हैं।

जिस प्रकार मौसम बदलता है उसी प्रकार मन भी बदलता है। मनुष्य का मन प्रति मिनट, प्रति घण्टा, प्रतिदिन बदलता है। मन की स्थिति बार-बार बदलने के

कारण जीवन के व्यवहार और कर्म प्रभावित होते हैं, इसी को कहते हैं वृत्ति। ये छः मित्र ही मनुष्य की मनोवृत्तियों के स्त्रोत बनते हैं। जब कोई वृत्ति उत्पन्न होती है तब आप उस वृत्ति के अनुसार कर्म करते हैं और उससे आंतरिक चंचलता उत्पन्न होती है।

महर्षि पतंजलि कहते हैं कि योग के द्वारा इन चंचल चित्त-वृत्तियों को नियन्त्रित करो। चंचल चित्त-वृत्तियों को नियन्त्रित करने के लिए पहले उन छः विकारों का निरोध करना है जो आपके दृष्टिकोण, मानसिकता, बुद्धि और कर्म को हर क्षण बदलते रहते हैं। जब इन छः विकारों का निरोध हो जाता है, तब एक दूसरी अवस्था जागती है जिसे कहते हैं ब्राह्मी वृत्ति। सांसारिक वृत्ति के शमन के पश्चात् ब्राह्मी वृत्ति का जन्म होता है। ब्राह्मी वृत्ति मन की एक विशेष अवस्था है जिसे आध्यात्मिक चेतना की जागृति के रूप में भी समझ सकते हैं।

यदि आप काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद और मात्सर्य रूपी षड्विकारों को सम्भाल लेते हो, जिनके कारण मन तमस् की अवस्था में रहता है, तब आप अपने मन के राजा बन पाओगे और आपमें आध्यात्मिक संस्कारों की जागृति होगी। एक बार जब आपके जीवन में आध्यात्मिक संस्कार जगेंगे तब आप तामसिक अवस्था से निकलकर सात्त्विक अवस्था में प्रवेश कर पाएँगे, जीवन के प्रकाश को देख पाएँगे और अक्षय सुख एवं शान्ति का अनुभव करेंगे।

– 26 जुलाई 2014, रंगमंच हॉल, स्वभूमि हेरिटेज प्लाज़ा, कोलकाता

बंगालवासियों के नाम संदेश

स्वामी शिवानन्द सरस्वती

आत्मस्वरूप!

तुम सभी को मेरा स्नेह और अभिनन्दन। तुम सब श्री रामकृष्ण परमहंस के दिव्य ज्ञान के प्रत्यक्ष उत्तराधिकारी हो। वे वेदों के साक्षात् स्वरूप थे। तुम्हें श्री चैतन्य महाप्रभु के आनन्द का खज़ाना विरासत में मिला है। तुमने स्वामी विवेकानन्द के प्रेरक संदेशों को सीधे प्राप्त किया है। बंगाल वास्तव में सौभाग्यशाली भूमि है जो राजा राम मोहन रॉय, महर्षि देवेन्द्रनाथ, विजय गोस्वामी, केशव चन्द्र सेन, पण्डित विद्यासागर, रवीन्द्र नाथ ठाकुर आदि मनीषियों से मिली प्रेरणा से निरंतर आप्लावित होती रही है। मैंने बंगाल को हमेशा उच्च आदर्शवाद, सच्ची देशभक्ति और कर्तव्यपारायणता के ज्वलन्त उदाहरण के रूप में देखा है। बंगाल सनातन धर्म के पुनरुत्थान का पर्यायवाची है। बंगाल ने पाश्चात्य सभ्यता के अंधकारमय भौतिकवाद पर वेदान्त का प्रकाश डाला है। इस वेदान्तिक ज्योति से तुम सम्पूर्ण मानवता का मार्ग निरंतर प्रशस्त करो।

अपने जन्मसिद्ध अधिकार को प्राप्त करो

दुनिया को इस ज्योति की आज सबसे अधिक आवश्यकता है। आज सारा संसार अंधकार से ढका है। मनुष्य का अपनी आत्मा पर से विश्वास उठ गया है, वह सांसारिक विषयों का गुलाम बनकर आज दया का पात्र बन गया है। लेकिन एक सच्चा भारतीय आत्मनिष्ठा में अडिग रहता है। एक सच्चे हिन्दू के लिये यह संसार ही नहीं बल्कि समूचा ब्रह्माण्ड एक तिनके से भी तुच्छ है। उसके लिये आत्मा ही एकमात्र सत्य है। इससे बढ़कर उसके लिये कोई खजाना नहीं। तुम सभी को यह महान् और उत्कृष्ट भाव व्यावहारिक रूप से जीवन में उतारकर पूरी दुनिया को दिखाना है। वेदान्त को व्यावहारिक बनाकर पाश्चात्य संस्कृति को उदारता से सिखाओ। प्राचीन ऋषि-मुनियों द्वारा प्रकाशित मार्ग का इन्हें दर्शन कराओ। सच्चा और सार्थक जीवन वही है जो अनश्वर आत्मा को समर्पित हो। सत् और असत्, परमार्थ वस्तु और अनित्य जगत् के बीच विवेक करते हुए इस आदर्श जीवन को जीयो। विवेक और विचार से वैराग्य और त्याग आयेगा। अपना चरित्र उत्कृष्ट बनाओ। कर्मठ और सदाचारी जीवन जीयो। इन्द्रिय-संयम, मानसिक शान्ति, प्रत्याहार, धैर्य, विश्वास और सत्यनिष्ठा से आत्म-शक्ति जागृत होगी। तुम सब प्रेरित, प्रबुद्ध जीव बन जाओगे। जीवन के उच्चतम लक्ष्य को प्राप्त करने के लिये तीव्र लालसा पैदा करो।

हे अमृतपुत्रों! अपने जन्मसिद्ध अधिकार को प्राप्त करो। मैं बंगाल में भारत के नवनिर्माण की आशाकिरण देखता हूँ। तुम्हें भविष्य के भारत के लिये प्रेरक आदर्श प्रदान करने हैं। यहीं पर अनेकता में एकता का, घृणा पर प्रेम की जीत का चमत्कार देखा गया। तुम सबको याद होगा कि कैसे कलकत्ता के हिन्दू-मुसलमानों ने नफरत और हिंसा का त्याग कर आपसी प्रेम और भाईचारे को प्रोत्साहन दिया था। मेरा इशारा शान्ति के महादूत, महात्मा गाँधी के आवाहन पर यहाँ के लोगों के हृदय में आये सुन्दर परिवर्तन की ओर है। सच्चा धर्म यही है। यह वेदान्त का आत्मभाव सिद्धान्त ही है जो मनुष्य को अपने छोटे-छोटे मतभेदों से ऊपर उठाकर *वसुधैव कुटुम्बकम्* का भाव अनुभव करने में सक्षम बनाता है।

वेदान्त का उदात्त संदेश

मैं तुम्हें वेदान्त के इसी भव्य संदेश की याद दिलाना चाहता हूँ। सभी मनुष्यों में पूर्ण एकता और भाईचारा होना चाहिये। वेदान्त ही वह एकमात्र दर्शन है जो जीवन में

ऊर्जा और साहस भर देता है। यह परम धर्म है जिसका अन्य किसी धर्म या सम्प्रदाय से कोई मतभेद नहीं। यह सभी धर्मों और मतों का भव्य समागम है। यह ज्ञान, सत्य और न्याय के दीपक को प्रज्ज्वलित कर सकता है। वेदान्त से तुम मानवता के सच्चे सहायक बन सकते हो। अपने दिव्य स्वरूप को पहचानो। सांसारिक पंक से बाहर निकलो। तुम भेड़-बकरी नहीं, शेर हो। तुम भिखारी नहीं, शाहंशाह हो। तुम इस नश्वर धरती से बंधे कमजोर प्राणी नहीं, ईश्वर के दिव्य संतान हो। हमेशा कहो कि मैं पूर्ण, अनश्वर और शाश्वत हूँ। तुम्हें कुछ भी प्रभावित नहीं कर सकता। डरो मत। तुम अनंत शक्ति का स्रोत हो। तुम ज्ञान के सागर हो। तुम विश्व का प्रकाश हो। इसकी अनुभूति करो, इसका साक्षात्कार करो। कोई दु:ख तुम्हें छू नहीं सकेगा। मुक्ति तुम्हारे कर-कमलों में है।

इसलिये हे दिव्य आत्माओं! त्याग, श्रद्धा, समर्पण और नि:स्वार्थता से परिपूर्ण जीवन व्यतीत करो। तुम्हारी आकांक्षा, तुम्हारा लक्ष्य नेक और पवित्र हो। संसार में जीयो पर संसारी न बनो। अपने जीवन को ईश्वरार्पण की अनवरत धारा में रूपान्तरित कर दो। *ईशावास्यमिदं सर्वम्, सर्वं खल्विदं ब्रह्म, अजरोऽहम्, अमरोऽहम्, अनामयोऽहम्, नित्यमुक्तस्वरूपोहम्* का निरंतर जप करो। आंतरिक जीवन की युद्धस्थली में साहसी योद्धा बनो। श्री राम की तरह सत्य में दृढ़ता से स्थित रहो। सीता, द्रौपदी और कुन्ती देवी की तरह जीवन की हर परिस्थिति में अडिग रहो। ये सच्चे वेदान्ती थे। हमेशा धर्म का पक्ष लो। सदाचारी पाण्डवों से प्रेरणा ग्रहण करो। *सत्यमेव जयते नानृतम्*–ऋषि-मुनियों ने स्पष्ट रूप से यह उद्घोषित किया है। धर्म, सत्य और आत्मनिष्ठा से उत्पन्न आत्मबल का अर्जन करो। धीर बनो, स्वतंत्र भारत एवं समस्त विश्व की आशा बनो। ईश्वर की कृपा तुम सब पर है। भगवान करे तुम सच्ची, आत्मीय स्वतंत्रता का आनन्द अनुभव करो। ॐ शान्ति: शान्ति: शान्ति:।

स्वामी शिवानन्द जी ने किसी व्यक्ति को पांच रुपये और कुछ फल दिये। बाद में उनको बताया गया कि वह तो बीड़ी बेचने वाला था। स्वामी शिवानन्द जी ने उत्तर दिया – 'तुम्हारे कहने का क्या मतलब है कि वह बीड़ी बेचता है, इस वजह से उसे पाँच रुपया न दिया जाए। नहीं, नहीं, हमारी ऐसी नीति नहीं होनी चाहिए। दान के विषय में विवेक निरर्थक है। सूर्य क्या विवेक का पालन कर सज्जनों को ही अपना प्रकाश देता है? आम का वृक्ष क्या भले लोगों को ही फल देता है? वायु दुर्जनों की नासिका में प्रवेश करने के लिए क्या इन्कार करती है? सभी नारायण-स्वरूप हैं। सभी हमारी आत्मा हैं। सदा विराट्-भावना से काम लेना चाहिए। मोक्ष-प्राप्ति का यही मार्ग है।'

आत्मशुद्धि के लिए कर्मयोग

स्वामी निरंजनानन्द सरस्वती

श्री कृष्ण ने कर्मयोग के विषय में बतलाते हुए गीता में कहा है– *योगिनः कर्म कुर्वन्ति संगं त्यक्त्वात्मशुद्धये,* अर्थात् योगी द्वारा किए गए कर्म का उद्देश्य आसक्ति का त्याग और आत्मशुद्धि की प्राप्ति होता है। जब कर्म में आसक्ति का त्याग है और कर्म का प्रयोजन आत्मशुद्धि है, तब उसे कहते हैं कर्मयोग। लेकिन जब कर्म का प्रयोजन ऐसा नहीं होता, बल्कि केवल धन कमाना, अपने घर को सुख और वैभव से भर देना, अपने परिवार के लिये अच्छे-अच्छे आभूषण-वस्त्र खरीदना होता है, तब वह कर्मयोग नहीं, मात्र कर्म होता है, जो मनुष्य के मुक्ति का हेतु नहीं, बल्कि बंधन का कारण बनता है।

अपने मन को राजयोग के द्वारा संयमित कर लेने के बाद जो कर्म आप करते हो वह कर्मयोग में परिवर्तित हो जाता है। आप कर्म से जुड़ी अपेक्षाओं से स्वयं को मुक्त कर पाते हो। गीता में कहा गया है, *कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।* कर्म का अधिकार सबको है, लेकिन फल से आसक्ति मत रखो। अगर कर्म का फल आशा के अनुरूप हो तो हर्ष होता है और अगर आशा के अनुरूप न हो तो दुःख होता है। हम अपने साथ समझौता नहीं कर पाते हैं। लेकिन जब हर्ष और विषाद, दोनों में सामंजस्य हो जाए तब कर्म केवल कर्तव्य का रूप लेता है, कार्य को रचनात्मक तथा सकारात्मक बनाता है और आपको परिणाम से मुक्त रखता है।

हमारे आश्रम में अनेक संन्यासी एक निश्चित दिनचर्या का पालन करते हुए पिछले कई वर्षों से आश्रम में रह रहे हैं। ये संन्यासी आश्रम में झाड़ू-पोंछा लगाने से कम्प्यूटर चलाने तक हर प्रकार का कार्य करते हैं। कुछ संन्यासी एक ही काम को लगातार करते-करते बोर हो जाते हैं और फिर मुझसे पूछते हैं, स्वामीजी आप बोर नहीं होते हैं क्या? मैं जवाब देता हूँ कि मैं पचास साल से रोज झाड़ू लगा रहा हूँ। मैं अपने जीवन में एक सिद्धान्त को अपनाकर चलने का प्रयास कर रहा हूँ। रोज मेरा जन्म होता है, रोज रात को मैं मरता हूँ। मेरा जीवन केवल एक दिन का होता है। सबेरे जब आँख खुलती है तब से मेरा जीवन आरम्भ होता है और जब शाम को आँख बन्द होती है तब मेरा जीवन समाप्त होता है। और मैं अपने जीवन के प्रत्येक दिन को उत्तमता के साथ जीने का प्रयास करता हूँ, दिन के सभी कार्यों को सर्वश्रेष्ठ ढंग से सम्पादित करने का प्रयास करता हूँ।

मैं प्रतिदिन अपने कमरे में यह सोचकर झाड़ू लगाता हूँ कि मैं अपने जीवन में पहली बार झाड़ू लगा रहा हूँ और मेरा प्रयास रहेगा कि मैं अच्छे-से-अच्छे तरीके से अपने कमरे की सफाई करूँ। इसलिए रोज झाड़ू लगाने के बावजूद भी मैं बोर नहीं होता क्योंकि हर दिन यह मेरे लिये एक नया कार्य है, जिसमें रुचि होती है, रचनात्मकता होती है। इस प्रकार मैं अपने जीवन के प्रत्येक कार्य में आसक्ति का त्याग करके उसे पूरी रचनात्मकता के साथ, सर्वश्रेष्ठ तरीके से कर पाता हूँ और इससे आत्मशुद्धि की अनुभूति भी होती है। यही कर्मयोग की व्यावहारिक परिभाषा भी है।

–26 जुलाई 2014, रंगमंच हॉल, स्वभूमि हेरिटेज प्लाज़ा, कोलकाता

शिक्षा, संस्कृति और अध्यात्म

स्वामी सत्यानन्द सरस्वती

योग की भाषा में कुण्डलिनी शक्ति मनुष्य के अन्दर में छिपी हुई प्रसुप्त प्रतिभा है, जो धीरे-धीरे जीव के विकास के साथ अपने को प्रकट करती है। यहाँ प्रतिभा से मेरा तात्पर्य बौद्धिक प्रतिभा से नहीं, आध्यात्मिक प्रतिभा से है। बौद्धिक प्रतिभा अपनी जगह पर है और आध्यात्मिक प्रतिभा अपनी जगह पर। परन्तु आजकल दुनिया में लोग केवल बौद्धिक प्रतिभा के विकास के लिए ही शिक्षा का आयोजन कर रहे हैं। बौद्धिक शिक्षा और विकास की एक सीमा होती है। मनुष्य जब बौद्धिक विकास की सीमाओं से मर्यादित होता है तब वह समाज में बुद्धि-भेद पैदा करता है, और इसी के परिणामस्वरूप कालान्तर में उसे अपने अन्दर असमर्थता मालूम पड़ने लगती है।

बौद्धिक उपलब्धियाँ मनुष्य के विकास के साथ-साथ जरूर चलती हैं, परन्तु एक दिन बौद्धिक प्रतिभा के ऊपर दैवी प्रतिभा का अवतरण जरूर होना चाहिए। यह वह प्रचंड शक्ति है, जिसे प्रकट करने के लिए यह मनुष्य शरीर हमें मिला है। यह मनुष्य शरीर और इसके अन्दर छिपी हुई ज्ञान की जो राशि हमें मिली है, उसका निश्चित प्रयोजन यही है कि हम दिव्य शक्ति का अन्वेषण करें, उसे जगायें और उसका सदुपयोग करें। हम भारतवासी इसी धर्म को जानते हैं, इसी को संस्कृति कहते हैं। हमारे बालक-बालिकाओं और नागरिकों के जीवन का और हमारे राष्ट्र का जो विकास होगा, उसका आधार यही आध्यात्मिक प्रतिभा होगी। इस आध्यात्मिक प्रतिभा की बात मैं क्यों बोल रहा हूँ, यह मैं बतला देता हूँ।

सारे संसार में शिक्षा के विराट् आयोजन हुए हैं और अनेक प्रगतिशील देशों में मनुष्य ने शिक्षा के क्षेत्र में काफी उन्नति प्राप्त कर ली है। मगर आज वे कहाँ हैं, किधर जा रहे हैं? वह बौद्धिक उपलब्धि किस काम की जहाँ बच्चा अपना मानसिक और भावनात्मक सन्तुलन खोकर, अपने जीवन की सीमाओं में उलझ जाए और दूर क्षितिज को अंधकारमय देखे। मैं यह नहीं कहता कि हमें उस रास्ते पर बिल्कुल नहीं चलना चाहिये अथवा बौद्धिक प्रतिभा की अनिवार्यता को ठुकरा देना चाहिये, बल्कि मैं कहना चाहता हूँ कि हमें उन लोगों के अनुभव से शिक्षा लेनी है। हमें यह समझना है कि मात्र बौद्धिक विकास के परिणामस्वरूप आज अनेकानेक सभ्यताएँ और संस्कृतियाँ किन-किन समस्याओं से होकर गुजर रही हैं।

मनुष्य की चेतना की पृष्ठभूमि में जो महान् शक्ति छिपी हुई है, उसे वह कैसे प्रकट करेगा, इस बात का ख्याल भी अब हमें शिक्षा के साथ-साथ रखना होगा। यदि हम शिक्षा को केवल जैसा आज तक समझते आये थे, उसी तरह से

समझते रहेंगे तो आगे जाकर हमारा भी वही हाल होगा जो अन्य देशों के बच्चों और बड़े-बूढ़ों का हो रहा है। भारत महान् था और इसी महानता की विरासत को लेकर आज हम जीवित हैं और अपने को भाग्यशाली मानते हैं। अगर हमें अपनी गौरवशाली संस्कृति को कायम रखना है, पुन: उसी महानता की ओर बढ़ना है तो कुछ ठोस काम करना होगा। उधारी से काम नहीं चलता, हमें स्वयं उपार्जन करना होगा और इन्हीं उपार्जन की प्रक्रियाओं को, वास्तविक विकास की विधियों को हमारे यहाँ साधना कहते हैं। यह साधना जब तक शिक्षा के साथ जोड़ी नहीं जायेगी, तब तक शिक्षा बाहरी शिक्षा ही रहेगी। इस सम्बन्ध में मैं आप लोगों को कुछ व्यावहारिक बातें बताना चाहूँगा।

शिक्षा-जगत् में योग

सबसे पहले हमने पेरिस में एक उच्चतर माध्यमिक विद्यालय में योग की शिक्षा प्रारम्भ की। पहले तो लोग सोचते थे कि योग बच्चों को कैसे सिखाया जायेगा। योग तो बूढ़े लोगों के लिए है और खासकर उनके लिए जो जीवन से, प्रवृत्तियों से रिटायर्ड हो चुके हैं या होने वाले हैं। मैंने कहा, ऐसी बात नहीं। सच पूछा जाए तो योग निवृत्तिमार्गियों के लिए नहीं, प्रवृत्तिमार्गियों के लिए है। चित्त चंचल होता है प्रवृत्तिमार्गियों का। असंतुलित, अविवेकी भावनाएँ प्रवृत्तिमार्गियों में होती हैं,

आशा-निराशा के झूले में प्रवृत्तिमार्गी झूलता है। हृदय पर निरंतर चोट प्रवृत्तिमार्गियों को लगती है। प्रेम, घृणा, राग और द्वेष प्रवृत्ति के लक्षण हैं। तब कैसे कहते हो कि योग निवृत्तिमार्गियों के लिए ही है!

हमें अपनी भावी पीढ़ी के लिए उन परिस्थितियों को पैदा करना होगा और उन संभावनाओं को चरितार्थ करना होगा, जिससे वे प्रतिभाशाली बन सकें, जीनियस बन सकें। इसके लिए आवश्यक है कि हम मनुष्य की आन्तरिक संरचना, मस्तिष्क, स्नायुओं और हॉर्मोन्स की प्रणालियों को जानें। आप लोग एक बात याद रखिए, आधुनिक चिकित्सा शास्त्र में मनुष्य के भ्रूमध्य के पीछे, रीढ़ की हड्डी के सबसे ऊपरी छोर पर एक छोटी-सी ग्रंथि होती है जिसे पीनियल ग्रंथि कहते हैं। योग की भाषा में उसे कहते हैं आज्ञाचक्र। यह ग्रंथि जब तक स्वस्थ रहती है, तब तक मनुष्य अपने मस्तिष्क में असन्तुलन पैदा करने वाले हॉर्मोनों की प्रणाली को नियंत्रण में रख सकता है। परन्तु जैसे-जैसे यह पीनियल ग्रंथि विघटित होने लगती है, वैसे-वैसे मनुष्य के मस्तिष्क में से प्रवाहित होने वाले हॉर्मोन उसके शरीर, भावनाओं और स्मरण शक्ति को प्रभावित करते हैं। यह रोज का अनुभव है।

यदि हम कोई ऐसी साधना अपने बच्चों को बता सकें जो उनकी पीनियल ग्रंथि को 15, 20 या 25 साल तक स्वस्थ रख सके और वह ग्रंथि उनके मस्तिष्क को, उनके पिट्यूटरी ग्रंथि को नियंत्रित कर सके तो आप उन्हें प्रतिभाशाली बना सकते हैं। प्रतिभा एक तथ्य है और प्रतिभा को जाग्रत करने के लिए हम परिस्थितियाँ पैदा कर सकते हैं। यह एक बात हुई।

दूसरी बात, जब मनुष्य का मन चेतन से अचेतन में प्रवेश करता है, उस समय उसका मस्तिष्क उर्वरा भूमि की तरह होता है, जहाँ बीज डालते ही अंकुरित हो उठता है। जब मनुष्य का मन बुद्धि के नियंत्रण में रहता है, उस समय वह समझता तो सब कुछ है, मगर वह बीज अधिकतर अंकुरित नहीं हो पाता। इसका तात्पर्य हुआ कि अर्द्धचेतन मस्तिष्क का विकास होना चाहिये। इसलिए हमें खोजना होगा कि कौन-सी ऐसी क्रिया, साधना अथवा स्थिति है, जिसके द्वारा हम अपने बच्चों के अर्द्धचेतन मस्तिष्क का विकास कर सकते हैं, ताकि हम जो शिक्षा उन्हें देते हैं अथवा वे जो अध्ययन करते हैं, वह सीधे उनके सूक्ष्म शरीर में प्रवेश करे और समय आने पर अंकुरित और प्रस्फुटित हो।

उदाहरण के तौर पर पेरिस के उस विद्यालय की बात बताता हूँ। कुछ बच्चे बहुत मंदबुद्धि थे। उनकी स्मृति अच्छी नहीं थी। जिन विषयों को वे समझ नहीं पाते थे, उन्हीं विषयों को लेकर उन्हें योगनिद्रा कराई गई, जिसका परिणाम अन्त में अत्यन्त आशाजनक निकला। यह कोई जादू-टोना नहीं है। यह योग की एक क्रिया है जिसे आधे घण्टे के अल्प समय में किया जा सकता है।

मनुष्य की सूक्ष्म शक्तियाँ

योग का व्यावहारिक पक्ष अत्यन्त सुन्दर और सरल है, क्योंकि इसका प्रारम्भ होता है आसन-प्राणायाम से। आसन-प्राणायाम का मतलब शारीरिक व्यायाम मत समझना। आसन मात्र शारीरिक व्यायाम नहीं है और प्राणायाम श्वसन का अभ्यास अथवा केवल ऑक्सीजन लेने की क्रिया नहीं है। यह मैं एक ऐसे अधिकारी व्यक्ति के रूप में कहता हूँ जिसने इसका दीर्घकाल तक विश्लेषण एवं अन्वेषण किया है। अगर संसार में किसी भी मनुष्य ने अणुबम और हाइड्रोजन बम से भी ऊँची विद्या निकाली है, तो वे हैं भारत के मनीषीगण और वह विद्या है योगविद्या या अध्यात्म विद्या। यह साधारण विद्या नहीं है। जैसे-जैसे मैं इस विद्या का अध्ययन करता गया हूँ, वैसे-वैसे मैं इस विद्या के प्रति पूर्णत: समर्पित होते गया हूँ। जरा सोचने की बात है कि जिस विद्या के अनुसरण मात्र से परमानन्द की प्राप्ति हो जाती है और जिसकी गहराई को बड़े-बड़े वैज्ञानिक नहीं नाप सके, ऐसी जबरदस्त विद्या उन प्राचीन लोगों की समझ में कैसे आ गई, जिन्हें आज का इतिहास बड़ा अविकसित साबित करता है। आज के पढ़े-लिखे लोग भी कहते हैं कि वे अनपढ़ और गँवार लोग थे। लेकिन जंगल में लंगोटी और फटी धोती पहनकर उन लोगों ने हमें जो दिया है, वह शायद भौतिक वैज्ञानिक जन्म-जन्मान्तरों में नहीं दे सकते।

मनुष्य में केवल तीन शक्तियाँ हैं, एक मन की, दूसरी प्राण की और तीसरी है आत्मा की। मन और प्राण की शक्तियाँ भौतिक शक्तियाँ हैं। योग में मन और प्राण को इड़ा और पिंगला कहा जाता है। प्राण शक्ति या पिंगला दाहिनी नासिका से बहती है और बाएँ मस्तिष्क को प्रभावित करती है। इसी प्रकार चित्त शक्ति या इड़ा बायीं नासिका से बहती है और दायें मस्तिष्क को प्रभावित करती है। इन दोनों नाड़ियों का उद्‌भव होता है मूलाधार चक्र से, जहाँ ये दोनों नाड़ियाँ रीढ़ की हड्डी के अन्दर से प्रवाहित होते हुए रीढ़ के ऊपर आज्ञा नामक चक्र में मिल जाती हैं। यहाँ ये मिल तो जाती हैं, मगर उनमें शक्ति का प्रवाह नहीं होता। ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार आपके स्विच दबाने से बिजली के तार तो जुड़ जाते हैं, लेकिन मेन स्विच ऑफ रहने पर उनमें विद्युत प्रवाह नहीं हो पाता।

जब निरन्तर साधना के द्वारा मूलाधार में शक्ति का जागरण होता है, तब शक्ति का संचार सर्वत्र होने लगता है। मानव शरीर में मानो ये चक्र एक बड़े जेनरेटर के समान हैं। आप लोगों की सारी जिन्दगी छोटे जेनरेटर पर चल रही है। हम कहते हैं कि बड़े जेनरेटर को चालू कर दो तो बड़ा अच्छा रहेगा। जब मूलाधार में शक्ति का जागरण होता है तो इड़ा और पिंगला, ये दोनों नाड़ियाँ शक्तिमय हो जाती हैं और आज्ञा चक्र में दोनों का योग होता है। तब मस्तिष्क के अन्दर की सम्पूर्ण प्रसुप्त प्रतिभाएँ जाग्रत होने लगती हैं। आपने सुना होगा कि मस्तिष्क का

केवल एक हिस्सा ही अभी काम कर रहा है, शेष नौ हिस्से सोये हुए हैं। ये नौ हिस्से जो सोये हुए हैं, अतीन्द्रिय शक्ति के केन्द्र हैं। उनकी सीमाएँ आकाश को छूती हैं और भूत, भविष्य, वर्तमान को एक करती हैं। हम लोगों की बुद्धि की जो वर्तमान अवस्था है, वह बहुत सीमित है। केवल इतने से ही हमारा मनोकायिक व्यक्तित्व पूर्णत: विकसित नहीं होता। इसलिये हमें मस्तिष्क के सम्पूर्ण विकास पर ध्यान देना चाहिये।

योगाभ्यास द्वारा हम मस्तिष्क के सम्पूर्ण विकास की ओर अग्रसर होते हैं। यद्यपि आसन-प्राणायाम के माध्यम से आज सारे संसार में असाध्य रोगों को दूर करने का प्रयत्न किया जा रहा है, लेकिन मैं बतला देना चाहता हूँ कि यह योगाभ्यास का लक्ष्य नहीं है। ये तो योग की अतिरिक्त उपलब्धियाँ हैं। वस्तुत: योग का अभ्यास जीवन के विकास के लिये करना चाहिये। रोगों का दूर होना कोई बड़ी बात नहीं। योगाभ्यास से रोग तो अपने आप दूर हो ही जायेंगे। जीवन का सार्वभौमिक विकास भी हो जायेगा। हम तो एक चीज जानते हैं कि रोग का मूल कारण है मन, और शरीर है उसकी क्रीड़ाभूमि। इसलिये अब यह आवश्यक है कि हम अपने बच्चों को, जो भविष्य में हमारी संस्कृति और हमारे देश के कर्णधार होने वाले हैं, योग के प्रति प्रोत्साहित करें।

ध्यान

हठयोग तो योग का एक छोटा-सा अंग है, परन्तु एक ऐसी विद्या जिसका स्थान योग में सर्वोपरि है और सारी दुनिया जिसकी गहराई में उतरने के लिये लालायित है, वह है ध्यान। जहाँ 'मैं'और 'तुम' की बात आती है, वहाँ द्वैत आ जाता है और वहाँ अहंकार आ जाता है। मैं तो उस स्थिति की बात कर रहा हूँ, जहाँ 'मैं' और 'तुम' निर्मूल हो जाते हैं, 'शब्द' और 'रूप' मिट जाते हैं, और केवल आत्म-चेतना का अनुभव होता है।

मैं आपको सोने का तरीका नहीं, सुषुप्तावस्था में भी जाग्रत रहने का तरीका बतला रहा हूँ। जब इन्द्रियाँ शान्त हो जाती हैं, मन विकल्परहित हो जाता है और कुछ समय के लिये नाम-रूप का भी विस्मरण हो जाता है और एक अनन्त चेतना का अनुभव होने लगता है, उस स्थिति को कहते हैं ध्यान। उसी स्थिति पर पहुँचकर मनुष्य अपनी वास्तविकता को जानता है। अभी तो हम भटक रहे हैं। अभी हमें अपने अस्तित्व के केन्द्र का पता नहीं है। इसके लिये हमें सबसे पहले शक्ति का संचय और संकल्प को दृढ़ करना होगा। निरन्तर प्रयास द्वारा शक्ति का जागरण कर जीवन की लौकिक और पारलौकिक, दोनों सीमाओं को पार करना होगा। इसके लिये सबसे सरल और उत्तम उपाय है ध्यान। संसार में लोग गलत विचारों के माध्यम से ऊँचे उठते हैं, जिससे उनका व्यक्तित्व, विचार और कर्म, सब खराब हो

जाते हैं। मगर ध्यान से जैसे-जैसे हमारे अन्दर एकाग्रता आती है, वैसे-वैसे हममें आरोग्य, प्रसन्नता, स्फूर्ति और आनन्द का विकास होने लगता है और हम अनेक प्रकार के कर्मों में सफल हो जाते हैं। यही योग है। यही योग का परिणाम है।

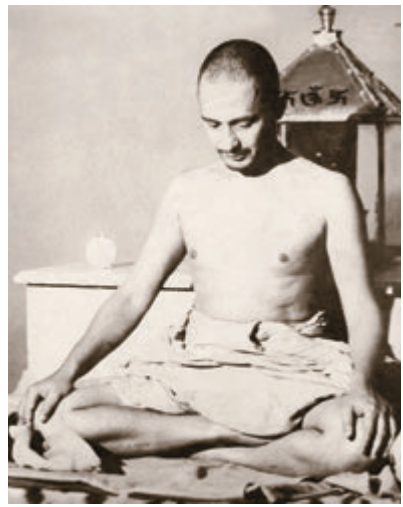

पिछले कई वर्षों से संसार में एक बहुत बड़ी क्रान्ति हो रही है। मनुष्य अपने को खोज रहा है। अनेक धर्मों के लोग यह पता लगा रहे हैं कि उस अनन्त शक्ति अथवा आनन्द का स्रोत कहाँ है। इसका मार्ग योग बतलाता है। यही भारतीय संस्कृति का उज्ज्वल पक्ष है। यदि इसे हम पारिवारिक और सामाजिक जीवन में ला सकें तो निश्चित रूप से हम एक नये समाज, एक नये भारत का निर्माण कर सकेंगे। इसलिये योग को हमें शिक्षा का एक अंग बनाना पड़ेगा। भारत के लोग योग के बारे में उदासीन हो गये हैं। आज ऐसी स्थिति है कि बहुत-से देशों की सरकारें हमसे कहती हैं कि उनके देशों में सर्वत्र योग का प्रचार किया जाये। जो देश कभी विश्व गुरु कहलाता था और जहाँ की सम्पदाओं से सारा संसार आश्चर्यचकित था, आज वही देश ज्ञान, ध्यान और सुख-सुविधाओं के लिये अन्य देशों की ओर हाथ फैलाये, यह शोभा नहीं देता। फिर भी हमें निराश नहीं होना है, कुछ करना है। एक आशा की किरण अभी भी बाकी है जहाँ हम पुन: अपनी खोई सम्पत्ति प्राप्त कर सकते हैं। और वह है योग।

आज केवल योगविद्या हमारे पास बची है। हमें इसके अस्तित्व को कायम रखना होगा। शिक्षा और संस्कृति के साथ इसका सम्बन्ध निश्चित ही हमें उज्ज्वल भविष्य की ओर प्रेरित करेगा। अत: इसका प्रचार-प्रसार होना चाहिये, अध्ययन और अध्यापन होना चाहिये। केवल दो-चार आदमियों के योग करने से कुछ होने का नहीं है। आज जितने भी विद्यालय हैं, उनमें इसको भी पाठ्यक्रम के रूप में रखना है। यह भूलना नहीं चाहिये कि योगाभ्यास के द्वारा मनुष्य की प्रसुप्त आन्तरिक प्रतिभाओं को निश्चित रूप से जाग्रत किया जा सकता है। जब ये प्रतिभाएँ जाग्रत होंगी तो हमारे देश में ऐसे-ऐसे महामानव उत्पन्न होंगे, जिनकी आप-हम कल्पना नहीं कर सकते। इसलिये हमारा तो यही मत है कि केवल भारत में ही नहीं बल्कि सम्पूर्ण विश्व में योग-संस्कृति का विकास कर हमें वर्तमान मानव को शाश्वत सुख-शान्ति और अमरता की ओर अग्रसर करना चाहिये।

भक्ति योग की परिणति – आत्मभाव

स्वामी निरंजनानन्द सरस्वती

प्राय: लोग भक्ति योग का अर्थ केवल कर्मकाण्ड या उपासना से लगाते हैं, लेकिन ये मात्र भक्ति योग के महत्त्वपूर्ण पक्ष हैं, पूर्ण रूप से भक्ति योग नहीं हैं। उपासना भक्ति का साधनात्मक पक्ष है जिसके अंतर्गत अनुष्ठान, मंत्र जप इत्यादि आते हैं। कर्मकाण्ड भक्ति का धार्मिक पक्ष है जिसमें पूजा-पाठ की विधियाँ बतलाई जाती हैं। भक्ति का तीसरा और अंतिम पक्ष है ज्ञानकाण्ड, जिसमें भक्त स्वयं को अपने आराध्य से अलग नहीं देखता है, अर्थात् आत्मभाव। यौगिक सिद्धान्त कर्मकाण्ड पर नहीं, बल्कि भक्ति के ज्ञानकाण्ड पर विश्वास रखता है।

भक्ति योग के इस ज्ञानकाण्ड को वेदान्त भी कहा गया है। वेदान्त और भक्ति का ज्ञानकाण्ड, दोनों एक ही चिन्तन और दर्शन को लेकर चलते हैं जो है आत्मभाव। इसी भाव को तुलसीदास जी इस तरह अभिव्यक्त करते हैं–

सीय राममय सब जग जानी। करउँ प्रनाम जोरि जुग पानी॥

मैं समस्त संसार को सियाराममय देखते हुए हाथ जोड़कर उनको नमस्कार करता हूँ। समस्त संसार में देखने का मतलब है कि हर पदार्थ में, हर जीव में उस अविनाशी तत्त्व का आभास होना और इसी को कहते हैं आत्मभाव।

हमारे दर्शन के अनुसार भगवान सबके भीतर है, लेकिन लोगों का आचरण कहता है कि भगवान मन्दिर में रहता है, सबके भीतर नहीं। लोग मंदिर में भगवान के सामने नतमस्तक होते हैं, मन्नत माँगते हैं, आराधना करते हैं, लेकिन जो भगवान के जीते-जागते स्वरूप हैं, उनकी हमेशा अवहेलना करते हैं। वे प्रतीक को मान्यता देते हैं, लेकिन जीवित की अवहेलना करते हैं।

हमारे गुरु जी कहते थे कि अगर तुम किसी व्यक्ति को भूख से तड़पते हुए देखते हो तो समझो कि केवल वह व्यक्ति भूख से नहीं तड़प रहा है, बल्कि उसके भीतर बैठा हुआ ईश्वर, जो उस व्यक्ति के सुख-दु:ख का भागीदार है, वह भी भूख से तड़प रहा है। तब क्या तुम उस ईश्वर की सेवा करोगे जो भूख से तड़प रहा है या केवल दोष दोगे कि वह तो अपने कर्मों का फल भोग रहा है, इसलिए मैं उसे भोजन नहीं दूँगा।

यहाँ सामाजिक और आध्यात्मिक दृष्टिकोण में भेद दिखलाई देता है। एक व्यापारी अगर किसी दरिद्र को देखता है तो उसे चाय पीने या खाना खाने के लिए कुछ पैसे दे देता है। व्यापारी दरिद्र को पैसे तो दे देता है, लेकिन वह केवल उसकी दरिद्रता को ही देखता है, उसके भीतर स्थित ईश्वर के दु:ख और अभाव को नहीं

देख पाता। यह है सामाजिक दृष्टिकोण। दूसरी ओर हमारे गुरु जी कहते हैं कि जब तुम किसी को प्यास से तड़पते देखते हो तो यह जानो कि उसके भीतर बैठा ईश्वर प्यास से तड़प रहा है, व्यक्ति नहीं। अगर तुम किसी को निर्वस्त्र देखते हो तो यह जानो कि उसके भीतर बैठा हुआ ईश्वर निर्वस्त्र है, क्योंकि वह उस मनुष्य के सुख और दु:ख का अनुभव करता है। यह है आध्यात्मिक दृष्टिकोण।

इस प्रकार जब हमें दूसरों में ईश्वर की अनुभूति होने लगती है और उस ईश्वर की सेवा और सहायता के लिये हम तत्पर होते हैं, तब यह आत्मभाव ही भक्ति का ज्ञानकाण्ड बनता है। और यही व्यावहारिक वेदान्त भी है।

इसलिये योग में जो भक्ति है, वह उपासना या कर्मकाण्ड पर आश्रित नहीं है, बल्कि ज्ञान पर आधारित है। और वह ज्ञान है आत्मभाव। आत्मभाव को जीवन में अवतरित करने के लिये ही भक्ति को सिद्ध किया जाता है। और जब भक्ति सिद्ध हो जाती है तब मनुष्य के जीवन में योग पूर्ण होता है।

–26 जुलाई 2014, रंगमंच हॉल, स्वभूमि हेरिटेज प्लाज़ा, कोलकाता

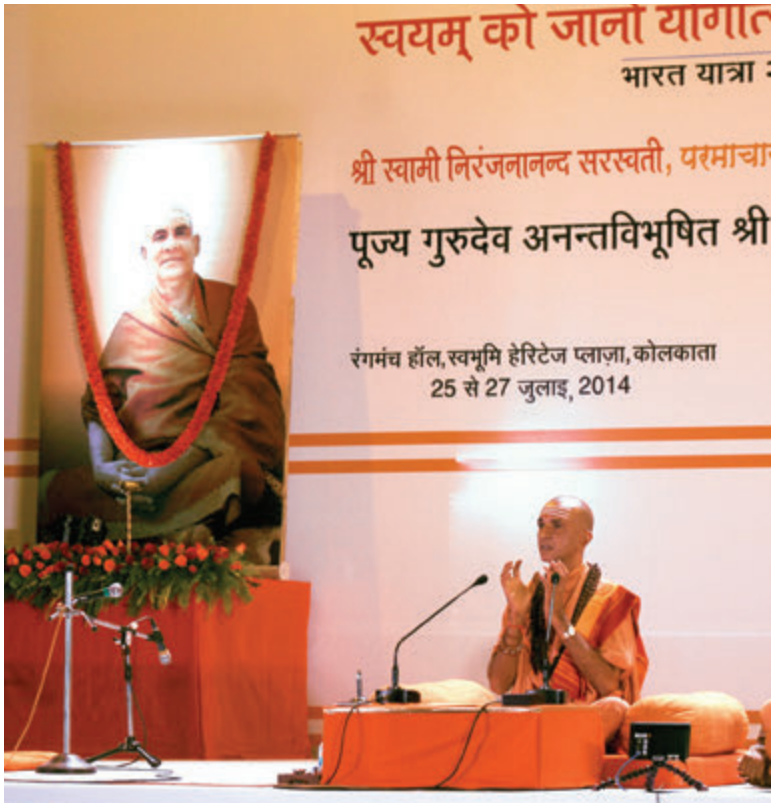

अतीत के झरोखे से

दिव्य जीवन संदेश

स्वामी शिवानन्द सरस्वती

स्वामी शिवानन्द जी ने अपनी कलकत्ता यात्रा के दौरान एस.वी.एस. विद्यालय पहुँचकर वहाँ के विद्यार्थियों और शिक्षकों को इस प्रकार सम्बोधित किया–

भगवान का नाम सभी दु:खों को हर लेता है। अगर तुम्हारे भीतर श्रद्धा है तो तुम्हें अष्ट ऐश्वर्य प्राप्त होंगे, और अगर श्रद्धावान् नहीं हो तो श्रद्धा अर्जित करने का अवश्य प्रयास करो। बारम्बार इस श्लोक के भाव को आत्मसात् करने का प्रयत्न करो–

ॐ नमो विश्वरूपाय विश्वस्थित्यंत्यहेतवे।
विश्वेश्वराय विश्वाय गोविन्दाय नमो नम:॥

सब कुछ भगवान का ही स्वरूप है, सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड उनका विराट् रूप है। मनुष्य को मनुष्य से अलग करने वाली सारी दीवारों को हटा दो। तब तुम्हें सच्चा सुख प्राप्त होगा। सेवा भाव विकसित करो। जप एवं कीर्तन करो। वेदान्त-विचार का अभ्यास करो। अविद्या को हटा कर सार्वभौमिक बन्धुत्व विकसित करो। सृष्टि आनन्द से ही उत्पन्न हुई है, आनंद में ही स्थित है और आनंद में ही विलीन होती है। प्रेम और आनंद एक ही चीज हैं। वैश्विक प्रेम को विकसित करो और आनंद में रहो।

तुमने आज तक कई प्रवचन और व्याख्यान सुने हैं, पर तुम उन पर अमल नहीं कर रहे हो। *सत्यं वद, धर्मं चर, मातृदेवो भव*–तुमने यह सब सुना है, पर तुममें से कितने लोग अपनी माता को भगवद्-स्वरूपा मानते हो? तुम्हें रोज अपनी माता का चरणामृत ग्रहण करना चाहिये। केवल उपदेश सुनने से कुछ नहीं होगा, उसकी शिक्षा को अपने जीवन में उतारो। *अहिंसा परमो धर्म:*–तुमने यह हजार बार सुना होगा। अब इसका अभ्यास करो। अहिंसा, सत्य और ब्रह्मचर्य को अपने व्यवहार में अभिव्यक्त करो। रोज घर-परिवार के सदस्यों के साथ कीर्तन करो। इसमें घर के सेवकों और नौकरों को भी शामिल करो। सबका चरित्र और स्वभाव रूपान्तरित हो जाएगा। सब को शाश्वत सुख की प्राप्ति होगी।

तुमसे अगर कोई अपशब्द कहता है तो तुम तुरंत उग्र होकर झगड़ने लगते हो। मात्र एक शब्द जब इतना शक्तिशाली है, तब फिर ईश्वर का नाम कितना शक्तिशाली होगा! आज संसार में व्याप्त ढेरों समस्याओं का निवारण भगवान के नाम मात्र से हो सकता है। *राम राम राम राम राम राम राम* – राम नाम का रोज जप करो। जप की संख्या को दस, बीस या सौ मालाओं तक बढ़ाओ। साथ-ही-साथ विश्वसेवा भी करो। तब तुम्हें सच्चा आनन्द प्राप्त होगा।

दुनिया की मौजूदा दयनीय स्थिति से उबरने के लिये दिव्य गुणों का विकास सबसे उत्तम मार्ग है। तुम केवल एक दैवी गुण विकसित करने की कोशिश करो, अन्य सभी सद्‌गुण अपने आप आ जायेंगे। मन को कुण्ठित करने वाले दुर्गुणों को हटाने का प्रयास करो। निरंतर साधना करते जाओ। शीघ्र परिणाम की अपेक्षा मत करो। सिद्धियों की प्राप्ति या प्रकाश दर्शन तुम्हारी साधना की प्रगति के द्योतक नहीं, बल्कि तुम्हारे अन्दर निर्भयता, संतोष और शान्ति की मात्रा ही तुम्हारी प्रगति की परिचायक है। पहले तुम एक शब्द मात्र से भड़क जाते थे और अब निन्दा-अपमान भी झेल लेते हो। यह बताता है कि तुम साधना में द्रुत प्रगति कर रहे हो।

भगवान की लीला रहस्यमयी है

भगवद्‌कृपा रहस्यमय तरीकों से प्राप्त होती है। एक बार भगवान कृष्ण और अर्जुन भेष बदलकर प्रजा के बीच धूम रहे थे। वे एक बड़े जमीनदार के घर पर पहुँचे और वहाँ भिक्षा माँगी। भिक्षा देने के बजाय उसने उन्हें डाँट-फटकार कर घर से निकाल दिया। श्रीकृष्ण जमीनदार को यह आशीर्वाद देते हुए चले गए कि तुम्हारी धन-

सम्पत्ति दस गुना हो जाए। फिर वे एक गरीब आदमी की कुटिया में गये जिसकी आमदनी का एकमात्र स्रोत उसकी गाय थी। उस आदमी ने घर आए मेहमानों को घर में रखा सारा दूध दे दिया। उसने श्रीकृष्ण और अर्जुन का बड़ा आदर-सत्कार किया। जाते समय भगवान कृष्ण ने उसे आशीर्वाद दिया, 'तुम्हारी गाय शीघ्र मर जाए।' और ऐसा हुआ भी। गाय तुरन्त मर गई।

अर्जुन को यह रहस्य समझ नहीं आया। वह बड़ी उलझन में था। उसने श्रीकृष्ण के इस अजीब व्यवहार के प्रति रोष जताया। तब श्रीकृष्ण बोले, 'अर्जुन, वह जमीनदार है तो सम्पन्न पर बहुत घमण्डी और अहंकारी है। उसे और अधिक धन देने से उसका मद और मोह और भी बढ़ जायेगा जो उसके पतन का कारण बनेगा। यही उसका दण्ड है। दूसरी ओर वह गरीब आदमी एक श्रद्धावान् भक्त है। उसकी सांसारिक आसक्ति बस एक ही चीज में है, और वह है उसकी गाय। गाय की मृत्यु होने पर उसे मेरे प्रति पूर्ण, अविभाजित श्रद्धा प्राप्त होगी और अंतत: वह मोक्ष प्राप्त करेगा।' ईश्वर-कृपा ऐसे रहस्यमय तरीकों से मनुष्य को प्राप्त होती है।

भगवान तुम्हारी उन्नति और विकास के लिये ही विभिन्न परेशानियाँ और विपदाएँ भेजते हैं। इनका प्रयोजन तुम्हारे अन्दर वैराग्य उत्पन्न करना होता है। पर इन विपदाओं के बावजूद लोग विषय-भोग के सुखों का त्याग नहीं करते। जब तुमने अपने और अपने परिवार के भरण-पोषण के लिये पर्याप्त धन इकट्ठा कर लिया हो तब तुम्हें और अधिक अर्थार्जन के पीछे नहीं भागना चाहिये। एकान्त में जाकर अपना पूरा समय साधना में लगाना चाहिये।

त्याग सच्चा होना चाहिए

त्याग की महिमा अवर्णनीय है। लेकिन यह मत सोचो कि त्याग का अर्थ संसार से भागकर किसी जंगल या गुफा में चले जाना है। आजकल लोग उस साधु का सम्मान करते हैं जो कौपीन पहनता है, लेकिन जो कुर्ता पहनता है उसपर हँसते हैं। यह सरासर गलत है। बाह्य त्याग वास्तविक त्याग नहीं है। असली त्याग तो तृष्णाओं और कामनाओं का होता है। कर्तृत्व अभिमान का त्याग ही सच्चा त्याग है। अगर तुम अकर्ता-अभोक्ता भाव विकसित कर लोगे तो कर्तृत्व अभिमान विगलित हो जायेगा।

अपने घर में एकान्त में रहो। अखबार-पत्रिका पढ़ना छोड़ दो। अखबार तुम्हें पूरी दुनिया की खबरों से भर देते हैं। मन एक बड़ा बाजार बन जाता है। ईश्वर के विचार ऐसे मन में कभी नहीं आयेंगे।

सतर्क रहो। अज्ञानमयी निद्रा से जागो। जप-कीर्तन करो, गीता-रामायण का अध्ययन करो। तब तुम अवश्य अखण्ड शान्ति और आनन्द को प्राप्त कर लोगे।

मुद्रा विज्ञान और मर्म योग

स्वामी निरंजनानन्द सरस्वती

हठयोग में मुद्राओं की व्याख्या विशेष भाव-भंगिमाओं के रूप की गई है जिनका मुख्य प्रयोजन प्राणशक्ति को पुन: शरीर में स्थापित करना और मानसिक शान्ति प्रदान करना होता है।

मुद्रायें अनेक प्रकार की होती हैं। धार्मिक अनुष्ठानों के लिए, मन को अंतर्मुखी बनाने के लिए, नृत्य-नाटिका के लिए तथा अन्य गतिविधियों के लिए अलग-अलग मुद्राओं का प्रयोग किया जाता है। हठयोग में मुद्राओं का प्रयोजन होता है शरीर के अंदर स्थित ऊर्जा केंद्रों को जागृत करना और इनसे निकलने वाली ऊर्जा को, जिसे योग की भाषा में प्राणशक्ति कहते हैं, शरीर में स्थापित करना। प्राय: इन ऊर्जा केंद्रों से निकलने वाली ऊर्जा का अधिकत्तर हिस्सा शरीर से बाहर निकल जाता है। हम उस शक्ति को शरीर के अंदर संरक्षित नहीं कर पाते हैं, उसका उपयोग नहीं कर पाते हैं। लेकिन मुद्राओं के प्रयोग से हम उस ऊर्जा को पुन: शरीर में स्थापित कर पाते हैं जिससे हमें शारीकि स्वास्थ्य के साथ-साथ मानसिक स्वास्थ्य भी प्राप्त होता है। यहाँ मानसिक स्वास्थ्य का तात्पर्य मानसिक शान्ति से है। मन को शान्त करने के लिये भी योग में मुद्रा का उपयोग किया जाता है।

मुद्रा करते समय हम शरीर के प्रसुप्त ऊर्जा केंद्रों को जागृत करने के लिए शरीर के निश्चित बिंदुओं पर दबाव डालते हैं जिन्हें योग की भाषा में मर्म कहते हैं। एक्यूप्रेशर और एक्यूपंक्चर चिकित्सा पद्धतियों में उपचार के लिए शरीर के इन्हीं बिंदुओं पर दबाव डाला जाता है। वास्तव में एक्यूपंक्चर और एक्यूप्रेशर मर्म सिद्धान्त का ही परिवर्तित रूप है जिसे चीन में विकसित किया गया। लेकिन मूल सिद्धान्त भारतीय योगशास्त्र का अंग है जिसे मर्मयोग कहते हैं और जिसमें शरीर के अन्दर स्थित सुप्त ऊर्जा केंद्रों का जागृत किया जाता है।

मेरुदण्ड के सात चक्रों के बारे में आपने सुना होगा। इसके अतिरिक्त भी शरीर के विभिन्न अंगों में ऐसे केंद्र हैं जो शरीर के विशेष क्रियाकलापों के लिए उत्तरदायी हैं। एक्यूप्रेशर या एक्यूपंक्चर में किसी अंग विशेष में दर्द के उपचार के लिए शरीर में स्थित जिन केंद्रों का इस्तेमाल किया जाता है उनका एक निश्चित कार्य होता है। उसी प्रकार से शरीर के अंग विशेष में स्थित मर्म बिंदु का भी एक विशेष कार्य होता है और जब हम मुद्राओं के द्वारा मर्म बिंदुओं में दबाव उत्पन्न करते हैं तो उसका प्रभाव संबंधित अंग पर पड़ता है।

मैं कुछ उदाहरण देता हूँ। जब आप वज्रासन करते हैं तब पैरों से होकर गुजरने वाली वज्र नाड़ी पर दबाव पड़ता है। इससे जठराग्नि प्रबल होती है जिसका सम्बन्ध

पेट और पाचन क्रिया के साथ है। इस स्थिति में वज्र नाड़ी एक मर्म बिंदु हुआ जो वज्रासन के कारण दबता है। इसी प्रकार हृदय मुद्रा करने से हृदय मजबूत होता है तथा हृदय संबंधी बीमारियों को ठीक करने में सहायता मिलती है। ज्ञानमुद्रा और चिन्मुद्रा करने से मन अंतर्मुखी बनता है, एकाग्र होता है और स्मृति शक्ति बढ़ती है। विशेषकर विद्यार्थियों को ज्ञानमुद्रा और चिन्मुद्रा का अभ्यास करना चाहिए, इससे उन्हें पढ़ी हुई चीजों को याद रखने में सहायता मिलेगी। साथ ही ध्यान के अभ्यासों में भी प्राय: ज्ञानमुद्रा और चिन्मुद्रा का प्रयोग किया जाता है।

मन की चंचलता को शान्त करने के लिये और मन की वृत्तियों को रूपांतरित करने के लिये शाम्भवी मुद्रा और आकाशी मुद्रा का अभ्यास किया जाता है। शाम्भवी मुद्रा में दृष्टि भ्रूमध्य पर टिकाई जाती है और आकाशी मुद्रा में इस दृष्टि के साथ-साथ सिर पीछे की ओर ले जाया जाता है। इन मुद्राओं के अभ्यास से मस्तिष्क में रासायनिक परिवर्तन होते हैं, साथ ही मस्तिष्क की तरंगें भी रूपांतरित हो जाती हैं।

–27 जुलाई 2014, रंगमंच हॉल, स्वभूमि हेरिटेज प्लाज़ा, कोलकाता

पूर्ण स्वास्थ्य के लिये योगाभ्यास

स्वामी सत्यानन्द सरस्वती

योग विज्ञान मनुष्य की शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक उन्नति में सदैव सहायक रहा है। वर्तमान वैज्ञानिक युग के आरम्भ से ही महान् विचारकों ने यह सम्भावना व्यक्त की थी कि मनुष्य ऐसी विचित्र व्याधियों और कष्टों से घिरता जा रहा है जिनका सम्बन्ध शरीर से कम और मन तथा अतीन्द्रिय शरीर से अधिक है। पिछले दो सौ वर्षों से मनुष्य के बाह्य जीवन में तनाव बढ़ता जा रहा है। परिणामस्वरूप ज्यादातर लोग अपने बारे में, अपने मन तथा आन्तरिक समस्याओं के बारे में समझने, विश्लेषण करने तथा सोचने की क्षमता खो चुके हैं। वे पूर्णतया भौतिकवादी हो चुके हैं। समाज के वर्तमान ढाँचे ने और रोज-रोज की समस्याओं ने उन्हें मजबूर कर दिया है कि वे केवल बाहरी घटनाओं को ही देखें। जो कुछ उनके अन्दर घटित हो रहा है, उसे देखने का समय उनके पास नहीं है। इसलिये आज के इस दौर में वे अपने शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य के आवश्यक नियमों की अवहेलना कर रहे हैं।

पिछले पचास वर्षों से मनुष्य के अन्दर क्या घटित हो रहा है और क्यों घटित हो रहा है, इस बारे में वह अब जागरूक होता जा रहा है। अब वह एक ऐसे विज्ञान की खोज में है जो उसे स्वस्थ व प्रसन्न रख सके और जीवन के हर मोड़ पर शान्ति प्रदान कर सके।

योग हमारे लिये कोई नयी चीज नहीं है। यह हमारे साथ युगों-युगों से जुड़ा हुआ है। बीच में एक समय ऐसा आ गया जब हमने इस विद्या को बिल्कुल भुला दिया। हमने योग के सही अर्थों को समझने में भूल की और सोचने लगे कि योग दैनिक जीवन के लिए नहीं है। इसका परिणाम यह हुआ कि योग एक भूली हुई विद्या बन गई। योग को भुला देने के कारण एक अन्धकार भरा युग आया। उस युग में अनजाने ही मनुष्य ने बहुत कष्ट सहे। अब इस शताब्दी में लोगों को कष्टों से छुटकारा दिलाने के लिए योग ने भारतवर्ष में फिर से जन्म लिया है।

योग समूचे संसार का है

इसका मतलब यह नहीं है कि योग विशेष रूप से भारत का विज्ञान है। यह सारे संसार का विज्ञान है। परन्तु यह भी मानना होगा कि जब समूचा संसार अज्ञान के अंधकार में डूबा हुआ था, सिर्फ भारतवर्ष ने ही योग की रक्षा की। यही कारण है कि समय-समय पर यहाँ बड़े-बड़े महात्मा हुए हैं जिन्होंने पूर्ण रूप से अपने को योग के उस आध्यात्मिक रूप के प्रति समर्पित कर दिया जो जीवन में सुख,

शान्ति और प्रसन्नता का आधार है। इस परम्परा के कारण भारतवर्ष में योग का वह उच्च ज्ञान नष्ट होने से बच गया जिसे संसार ने अपनी अज्ञानता और उपेक्षा के कारण खो दिया था।

योग की इस परम्परा को भारतवर्ष के श्रद्धावान् और समर्पित लोगों ने अक्षुण्ण रखा है। इसका परिणाम यह है कि जहाँ सारा संसार इस मशीनी युग में भ्रमित हो रहा है, वहाँ भारतवर्ष योग की विभूतियों को जन्म दे रहा है। उनकी शिक्षा से एक बार फिर योग ने सम्पूर्ण विश्व में प्रसिद्धि पाई है और इससे एक जाति या धर्म विशेष का नहीं, पूरी मानवता का कल्याण हो रहा है।

हमें यह निश्चित रूप से समझना है कि योग ही जीवन को सही ढंग से जीने का सहज मार्ग है। योग की विभिन्न शाखायें, जैसे हठयोग, राजयोग, भक्तियोग, कर्मयोग, लययोग और क्रियायोग, सभी मनुष्य के मन-मस्तिष्क और शरीर पर अपना गहरा प्रभाव डालती हैं।

हठयोग–स्नायुओं को गतिमान करने हेतु

उदाहरण के लिये हठयोग पर विचार करें। हठयोग एक ऐसी चमत्कारिक विद्या है जिसे आज की मानवता ने फिर से खोज निकाला है। योग शब्द सम्मिलन की ओर संकेत करता है, तथा 'हठ' शब्द सूर्य और चन्द्र की शक्तियों की ओर। ये दो शक्तियाँ मनुष्य के शरीर में रहती हैं। एक उस शक्ति की आधारशिला है, जो हमारा प्राण है, जिसके सहारे हम जीते हैं। दूसरी चेतना और चित्त की शक्ति

Organised by the Citizens of Kolkata and

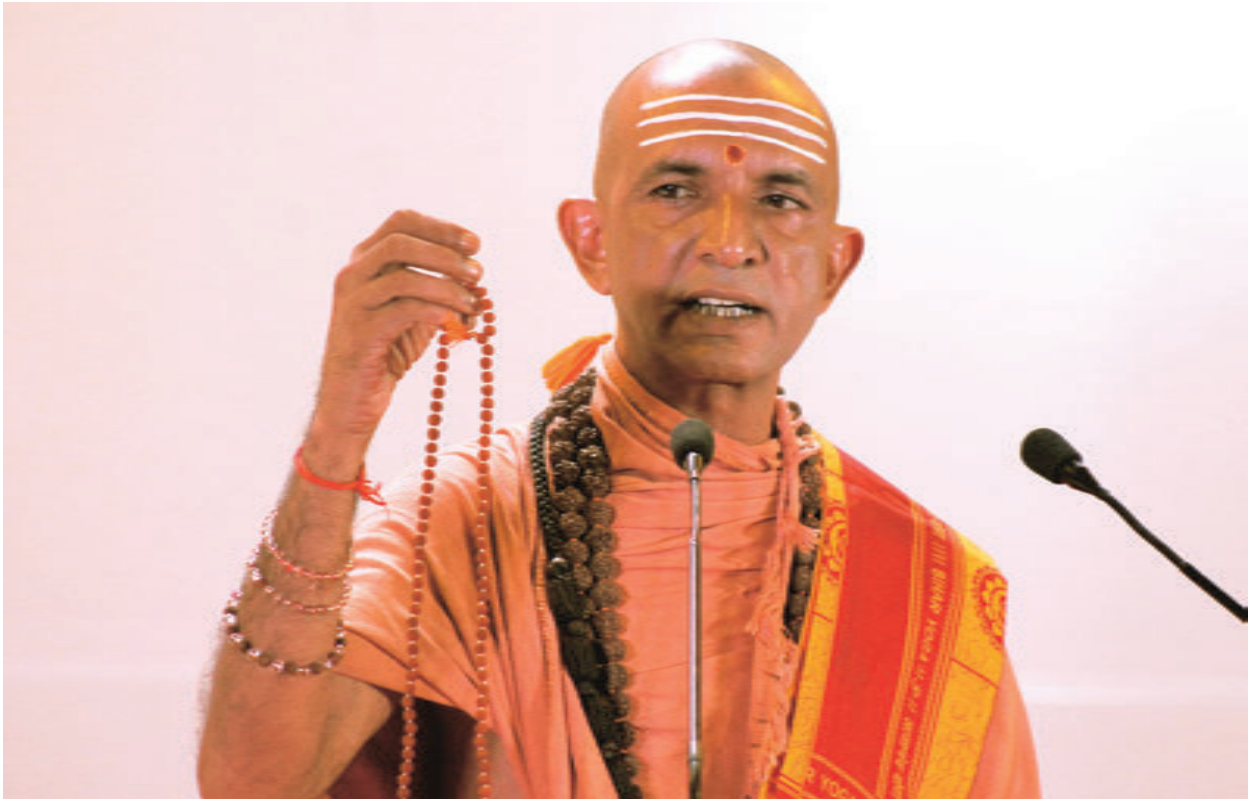

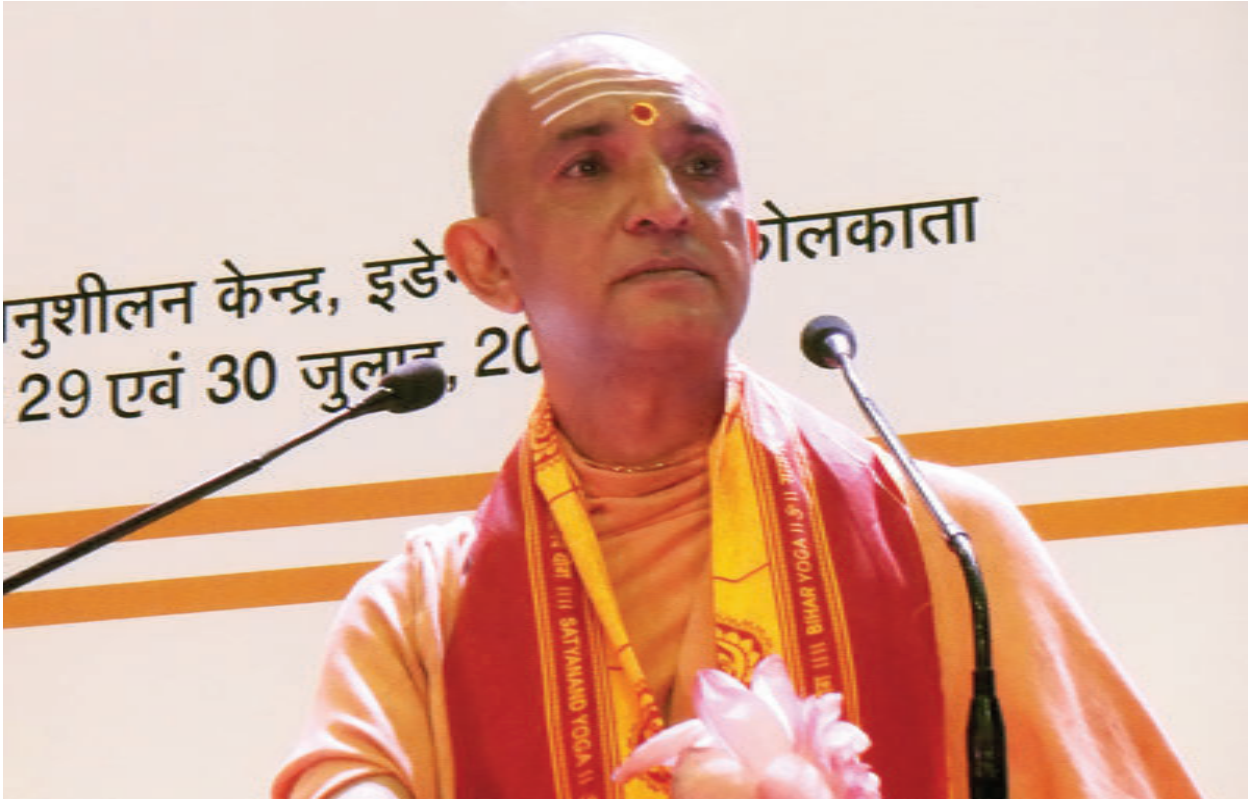

नुशीलन केन्द्र, इडे
कोलकाता
29 एवं 30
SATYANAND YOGA
BIHAR YOGA

है, जिसकी सहायता से हम सोचते और अनुभव करते हैं। ये दोनों शक्तियाँ ही हमारे शरीर-संचालन, हमारे सोचने के ढंग और हमारी प्रत्येक शारीरिक घटना के लिये उत्तरदायी हैं। अगर इन दोनों शक्तियों में सामंजस्य नहीं रहता, तो समझिये कि वही हमारी बीमारियों का, बैचेनी का और अशान्ति का कारण बनता है। जब इनमें सामंजस्य रहता है और ये मिलकर काम करती हैं तब हमें शान्ति मिलती है और हमारा शरीर स्वस्थ रहता है। हठयोग का अभ्यास करने से इन दोनों शक्तियों का संतुलन ठीक रहता है। सम्पूर्ण शरीर शुद्ध हो जाता है। इससे सामंजस्य और शान्ति की स्थितियाँ निर्मित होती हैं।

हमारे शरीर के ढाँचे में जो रीढ़ का हिस्सा है वहाँ दो नाड़ियाँ हैं जिनका प्रवाह नीचे से ऊपर की ओर होता है। ये आपस में चार जगहों पर एक-दूसरे से मिलती हैं। हठयोग की भाषा में इन्हें इड़ा और पिंगला नाड़ियों के नाम से जाना जाता है। इड़ा मानसिक शक्ति का संचालन करती है और पिंगला प्राण शक्ति का। ये दो नाड़ियाँ रीढ़ की हड्डी के नीचे एक विशेष अतीन्द्रिय केन्द्र से निकलती हैं, जिसे मूलाधार चक्र कहा जाता है। फिर वे एक-दूसरे को स्वाधिष्ठान चक्र में काटती हैं। फिर मणिपुर चक्र में, अनाहत चक्र में, और विशुद्धि चक्र में एक-दूसरे को काटती हैं। अन्त में ये दोनों आज्ञा चक्र में आकर एक-दूसरे से मिल जाती हैं।

मन और शरीर सम्बन्धी बीमारियाँ

इड़ा और पिंगला नाड़ियों की शक्ति चक्रों द्वारा शरीर की छोटी-छोटी कोशिकाओं में, हर कण में, हर अंग में पहुँचायी जाती है। अगर इड़ा नाड़ी में किसी तरह की कमजोरी और शक्तिहीनता आती है तो इड़ा से सम्बन्धित अंगों में कष्ट होता है। इसी प्रकार अगर पिंगला नाड़ी में अगर कोई शक्तिहीनता या अवरोध उत्पन्न होता है तो पिंगला से संबंधित अंग प्रभावित होते हैं। संक्षेप में हर बीमारी का यही कारण है।

बीमारी या तो शारीरिक होती है या मानसिक। इड़ा नाड़ी मानसिक बीमारियों के लिए उत्तरदायी है और पिंगला नाड़ी शारीरिक बीमारियों के लिए। कभी बीमारी शारीरिक रूप से शुरू होती है और मानसिक रूप में बदल जाती है तो कभी मानसिक रूप से शुरू होकर शारीरिक बन जाती है। प्राय: यह निर्णय करना कठिन हो जाता है कि बीमारी शारीरिक है या मानसिक अथवा दोनों है।

आसन और प्राणायाम के प्रयोजन

हठयोग में हम हर बीमारी को शारीरिक और मानसिक, दोनों रूपों में देखते हैं। इसलिये हठयोग के आसनों को केवल शारीरिक कसरत ही नहीं समझना चाहिये। ये आसन शरीर की वे अवस्थायें और स्थितियाँ हैं जो अपने स्वाभाविक गुणों से

शरीर की नाड़ियों के विद्युत-परिपथों को प्रभावित करती हैं और उनमें परिवर्तन लाती हैं। आसनों को सरलता से करने के लिए पहले शारीरिक शुद्धि हेतु आपको षट्कर्म करने होंगे।

प्राणायाम श्वास-सम्बन्धी विज्ञान है। प्राणायाम को भी हमने बहुत गलत ढंग से समझा है। लोग इसे श्वास की कसरत समझते हैं जब कि वस्तुत: यह हमारे प्रसुप्त प्राण को जाग्रत करता है। इससे शरीर की विभिन्न अस्त-व्यस्त कोशिकाओं में सुधार हो जाता है। जब शरीर षट्कर्म की क्रिया द्वारा शुद्ध हो जाता है और आसन में निपुणता प्राप्त हो जाती है, तब प्राणायाम का अभ्यास आरम्भ किया जा सकता है। प्राणायाम करने से शरीर में फिर से शक्ति आवेशित होती है तथा इड़ा और पिंगला नाड़ी के माध्यम से यह शक्ति मस्तिष्क समेत शरीर के हर हिस्से को प्रभावित करती है।

मंत्र और यंत्र–मस्तिष्क के बोझ को हल्का करने के लिए

पूर्ण स्वास्थ्य के लिए मंत्र, यंत्र और मंडल के विज्ञान को जानना भी बहुत आवश्यक है। मंत्र ध्वनि का विज्ञान है। ध्वनि-तरंगें शारीरिक और मानसिक, दोनों शरीरों को प्रभावित करती हैं। लोग समझते हैं कि दवा, इंजेक्शन, गोलियाँ और जड़ी-बूटियाँ बीमारियों को मिटा देती हैं। ये अच्छी चीजें हैं, परन्तु यह निश्चित है कि इन सबसे बढ़कर एक और विधि है जो ज्यादा शक्तिशाली और प्रभावशाली है, और वह है ध्वनि। विशेष रूप से वह ध्वनि जो मंत्र के रूप में होती है। मंत्र योग में आप बार-बार एक ही तरह के शब्दों को और एक ही तरह की ध्वनि को दोहराते हैं। मंत्र ध्वनि में रूपान्तरित हो जाता है, जो शुद्ध शक्ति का स्वरूप है। इससे शरीर की शक्तिहीन कोशिकाओं को नया जीवन मिलता है और वे पुन: कार्यशील हो जाती हैं।

मनुष्य का मस्तिष्क अनगिनत संस्कारों का भण्डार है। ये संस्कार मनुष्य के वर्तमान जन्म और पूर्वजन्म के तथा उसके पूर्वजों के अनुभवों के प्रतीक होते हैं। हर एक अनुभव जिसे हमारी चेतना ग्रहण करती है, हमारे मस्तिष्क में सांकेतिक रूप में अंकित हो जाता है। अनुभवों को अंकित करने वाली तथा उन्हें रूपान्तरित करके मस्तिष्क में रखने वाली प्रक्रिया जन्म से मृत्यु तक निरन्तर चलती रहती है। ऐसा कोई अनुभव नहीं है जिसे हमारी चेतना नष्ट कर सके। यहाँ तक कि सोते समय, स्वप्न देखते समय, अर्धनिद्रित अवस्था में, पूर्ण बेहोशी के समय भी जो अनुभव होते हैं, वे भी स्थूल, मानसिक या कारण शरीरों में किसी-न-किसी प्रतीक का रूप ले लेते हैं। इन अनगिनत संस्कारों की जीवन में अभिव्यक्ति होती रहती है।

यन्त्र ज्यामितीय प्रतीकों का विज्ञान है। ये हमें उन संस्कारों से छुटकारा दिलाते हैं, जो हमारी चेतना में, बिम्बों, अतीन्द्रिय अनुभवों, दैवी अनुभवों या अशान्ति

के रूप में कहीं बहुत गहराई में एकत्र हो गये हैं। इस तरह हमारे मन-मस्तिष्क को भार-रहित करके मंत्र और यंत्र हमारी अंत:शक्ति को निर्मुक्त कर देते हैं।

योग निद्रा–मस्तिष्क को तनाव-रहित करने के लिए

हम अपने दिमाग, शरीर और भावनाओं पर तनावों का बोझ डालते रहते हैं, जिससे हमारा स्वास्थ्य प्रभावित हो जाता है। योग में इस तनाव से छुटकारा पाने के लिए, अपने मन-मस्तिष्क को शिथिल करने के लिए योग निद्रा का अभ्यास किया जाता है। इस क्रिया से प्रत्याहार की स्थिति आ जाती है। यह एक ऐसी स्थिति है जिसमें मस्तिष्क का इंद्रियों से सम्बन्ध-विच्छेद हो जाता है। मन, मस्तिष्क और चेतना नये रूप लेकर जन्मते हैं। तब मानसिक, शारीरिक और भावनात्मक तनाव शीघ्र ही दूर हो जाते हैं।

क्रियायोग–आत्मशक्ति को बढ़ाने के लिए

ऐसे सात्त्विक लोग बहुत कम होते हैं जिनके व्यक्तित्व में पूर्ण सामंजस्य की स्थिति रहती है। राजसिक प्रवृत्ति के लोग अधिक होते हैं। उनका जीवन अन्तर्द्वन्द्वों से घिरा होता है। तामसिक प्रवृत्ति के लोग बहुसंख्यक होते हैं जो यह भी नहीं जानते कि उनके मन में अन्तर्द्वन्द्व चल रहा है। इसलिये योग की क्रियायें अलग-अलग व्यक्तियों के लिये अलग-अलग होती हैं। जिन व्यक्तियों को बहुत कम अन्तर्द्वन्द्वों से जूझना पड़ता है और जिनकी मानसिक स्थिति सामंजस्यपूर्ण है, उनके लिये ध्यान योग की क्रिया उपयुक्त है। वे किसी एक विचार बिन्दु पर ध्यान एकाग्र कर सकते हैं।

जिन व्यक्तियों के जीवन में द्वन्द्व ही द्वन्द्व भरे हुए हैं, वे एक विचार बिन्दु पर ध्यान एकाग्र नहीं कर सकते। अगर उन्हें चित्त को एकाग्र करने के लिये बाध्य किया जायेगा तो कोई मानसिक समस्या उत्पन्न हो जायेगी। ऐसे लोगों की सोई हुई आत्मशक्ति को जगाने के लिये क्रियायोग की छोटी-छोटी सुगम क्रियायें उपयुक्त सिद्ध होंगी। इस युग के लिए और आज की मानवता के लिए क्रियायोग एक अनिवार्य साधना है क्योंकि अधिकांश लोग ऐसे हैं जो

अपने ध्यान को एकाग्र नहीं कर सकते। ऐसे लोगों के मन को राजसी प्रवृत्तियों और दुर्व्यसनों ने इतना जकड़ लिया है कि चाहने पर भी उनमें एकाग्रता और स्थिरता नहीं आ पाती। मनुष्य ने अनजाने में ही स्वयं को इन दुर्व्यसनों के प्रवाह में डाल दिया है, परन्तु यह मानव की वास्तविक नियति नहीं है। उसे अपने आपको इस स्थिति से निकाल कर एक उच्च मानसिक स्थिति तक ले जाना है। मनुष्य को ऐसा करना ही होगा। आज नहीं तो दस या बीस हजार वर्षों की अवधि में उसे अपने आपको इस स्थिति से निकालना ही होगा। मनुष्य की चेतना के माध्यम से प्रकृति का क्रम-विकास हो रहा है। क्रियायोग से इस क्रम-विकास की गति में तेजी आयेगी। तब मानव यहीं, इसी धरती पर अपने उच्चतर मन की स्थिति का अनुभव करेगा।

प्रसन्नता और स्वास्थ्य

मनुष्य को भले ही कोई शारीरिक व्याधि न हो, फिर भी हम उसे स्वस्थ मनुष्य नहीं कह सकते। हो सकता है वह घबराहट, चिन्ता या अशान्ति से ग्रस्त हो। शारीरिक स्थिति से स्वास्थ्य का पता नहीं लगाया जा सकता। यह योग का पहला मुख्य सिद्धान्त है। कोई व्यक्ति शारीरिक रूप से पूर्ण स्वस्थ होकर भी बहुत दु:खी हो सकता है। क्या आप किसी दु:खी मनुष्य को स्वस्थ कहेंगे? क्या अप्रसन्नता अपने आप में एक बीमारी नहीं है? आपका मन शान्त, निरुद्विग्न और आनन्द से परिपूर्ण रहना चाहिये। यह योग का दूसरा मुख्य सिद्धान्त है।

हो सकता है आपके पास खाने के लिए बहुत है, रहने के लिए अच्छा मकान है और खर्च करने के लिए बहुत पैसा है, फिर भी आप अज्ञान के अनन्त अंधकार में डूबे हुए हैं और बाहर निकलने के लिए रास्ता खोज रहे हैं। क्या अविद्या ही मनुष्य मात्र की सभी बीमारियों की जड़ नहीं है?

आज समूचे संसार में सैंकड़ों-हजारों लोग योग की साधना कर रहे हैं और असाध्य बीमारियों से छुटकारा पा रहे हैं। आज के इस समाज में रहने के लिए वे नये तरह से अपना मानसिक विकास कर रहे हैं। योग उन्हें अपने जीवन के विकास के लिए नयी आशा प्रदान करता है। जो लोग शरीर की अस्वस्थता के कारण जीवन की सारी खुशियाँ खो चुके थे, वे आज पूर्ण रूप से स्वस्थ और प्रसन्न हैं। आज विश्व में हजारों योग संस्थाएँ हैं, हजारों योग शिक्षक और विद्यार्थी हैं। योग ने मानवता को क्या दिया है? एक नया धर्म? एक नया पंथ? नहीं, योग ने दिया है एक ऐसा विज्ञान जिससे मनुष्य अपने मन के रूपान्तरण का अनुभव कर सके। हाँ, सही अर्थों में मानवता के लिए योग का यही योगदान रहा है और रहेगा।

प्रत्याहार, धारणा और ध्यान

स्वामी निरंजनानन्द सरस्वती

मन की साधना प्रत्याहार से शुरू होती है। इसमें हम अपनी इन्द्रियों को अपने भीतर समेटते हैं। यह पहली स्थिति है। गीता में श्रीकृष्ण अर्जुन को पहली शिक्षा प्रत्याहार की ही देते हैं, ध्यान की नहीं। वे अर्जुन से कहते हैं कि जिस प्रकार कछुआ अपने अंगों को अपने कवच में समेटता है उसी प्रकार तुम भी अपनी इन्द्रियों को अपने भीतर समेट लो। प्रत्याहार के बाद ही ध्यान की शुरुआत हो सकती है। जब तक हमारी इन्द्रियाँ संसार से जुड़ी रहेंगी तब तक हमारा मन भी संसार से जुड़ा रहेगा, जिसके कारण मन और मन की वृत्तियाँ चंचल रहेंगी। इस चंचल अवस्था में ध्यान की तन्मयता का अनुभव करना संभव नहीं होता है।

प्रत्याहार के बाद आता है धारणा और धारणा के बाद है ध्यान। इन तीनों अवस्थाओं को ठीक ढंग से समझना आवश्यक है। प्रत्याहार है अपनी इन्द्रियों को समेटना, धारणा है एकाग्रता और ध्यान है तन्मयता। जब हम अपनी इन्द्रियों को बाहर के विषयों से हटाकर अपने आपको भीतर किसी एक बिन्दु, विचार, मंत्र या आराध्य में केन्द्रित करने का प्रयास करते हैं, उस समय मन निश्चित रूप से इधर-उधर भागता है। उसे पकड़कर लाते हैं, फिर वह भागता है। पकड़ने और भागने की जिस प्रक्रिया से हम लोग जूझते रहते हैं, वह है प्रत्याहार की अवस्था। लेकिन एक स्थिति ऐसी आती है जब किसी एक बिंदु या वस्तु पर मन केंद्रित हो जाता है और यह है धारणा की अवस्था।

हमारे गुरु जी कहते थे कि मन को केंद्रित करने के लिये किसी भी वस्तु का उपयोग किया जा सकता है। एक भावना पर्याप्त है, एक दृश्य भी पर्याप्त है, चाहे वह चन्द्रमा हो, ज्योति हो, इष्ट की छवि हो, गुरु की मूर्ति हो या एक बिन्दु हो। किसी भी चीज पर आप अपने मन को टिका सकते हो। मन का स्वभाव है द्वैत, वह अद्वैत अर्थात् निराकार का अनुभव नहीं कर सकता। इसलिए मन को एक अलग आधार की आवश्यकता होती है।

बहुत-से लोग कहते हैं कि प्रणव ध्यान करने से निराकार का अनुभव होगा, लेकिन जिनका मन वासनायुक्त है वह निराकार का अनुभव कभी नहीं कर पायेगा। इस विषय में योग के विचार बहुत स्पष्ट हैं। योग के अनुसार तुम अपने जीवन में, अपने मन में और अपनी भावना में जिस अभिव्यक्ति को देख रहे हो, पहले उसको शान्त करो। अगर चिन्ता है तो पहले चिन्ता को शान्त करो, अगर दुःख है तो पहले दुःख को शान्त करो। यह प्रक्रिया प्रत्याहार के अभ्यास में मानसिक तथा वैचारिक अवलोकन द्वारा सम्भव हो पाती है।

प्रत्याहार के अंतर्गत योगनिद्रा, अजपाजप और अन्तर्मौन जैसी विधियाँ आती हैं जिनका अभ्यास करने से धीरे-धीरे एकाग्रता आती है। एकाग्रता का मतलब मन कम भटकता है। एक घण्टे में पहले सौ बार भटकता था तो अब एक घण्टे में केवल पाँच बार भटकेगा। मतलब 95 प्रतिशत भटकाव समाप्त हो गये, मन 95 प्रतिशत केंद्रित हुआ। इस स्थिति को कहते हैं धारणा, मतलब किसी वस्तु या अवस्था को हम अपने भीतर धारण कर सकते हैं। उसके बाद तन्मयता की स्थिति आती है जिसको कहते हैं ध्यान। लेकिन इसके लिये पहले क्रमबद्ध तैयारी और अभ्यास आवश्यक है।

ध्यान की शुरुआत सजगता से होती है। सजगता को प्राप्त करके हम जाते हैं एकाग्रता की ओर। एकाग्रता को प्राप्त करके हम जाते हैं तन्मयता की ओर और जब हम तन्मय हो जाते हैं, तब उस अवस्था को कहते हैं ध्यान। एकाग्रता को ध्यान नहीं कहते हैं। जहाँ पर मन थोड़ी देर के लिए स्थिर होता है और फिर भटक जाता है, उसको कहते हैं एकाग्रता। बार-बार हमारा मन भागता है और बार-बार हम उसे खींचकर लाते हैं।

इसलिए आज तक इस संसार में शायद ही कोई ध्यान कर पाया है। ध्यान का मतलब होता है एक बिन्दु में लिप्त हो जाना, तन्मय हो जाना। स्वामी विवेकानन्द जी एक उदाहरण दिया करते थे कि अगर दो प्रेमी एक-दूसरे से प्रेमभरी बातें कर रहे हों तब एक घण्टा भी पाँच मिनट जैसा प्रतीत होता है, लेकिन अगर किसी व्यक्ति से कह दो कि गर्म तवे पर तीस सेकण्ड के लिये बैठ जाओ तो वे तीस सेकण्ड उसके लिये घण्टों जैसे लगेंगे, क्योंकि वहाँ तन्मयता है ही नहीं। लेकिन जहाँ पर तन्मयता होती है वहाँ पर मन का लय हो जाता है और लय की स्थिति में ही ध्यान की अवस्था आती है।

ध्यान की अवस्था को प्राप्त करने के लिए सबसे पहले प्रत्याहार और उसके बाद धारणा का अभ्यास आवश्यक होता है। यह एक निश्चित क्रम है और यही क्रम महर्षि पतंजलि के राजयोग में भी बतलाया गया है।

–27 जुलाई 2014, रंगमंच हॉल, स्वभूमि हेरिटेज प्लाज़ा, कोलकाता

योग के उपचारात्मक, स्वास्थ्यवर्द्धक और निरोधक पक्ष

स्वामी निरंजनानन्द सरस्वती

आज-कल योग को प्राय: शरीर और बीमारी से जोड़ दिया जाता है, और लोग अक्सर कहते हैं कि योग करोगे तो बीमारी ठीक हो जायेगी। लेकिन हम ऐसा नहीं मानते हैं। यह लोगों का कहना है, योग का कहना नहीं है। योग शिक्षक भले ही बोल सकते हैं कि हम योग से आपकी बीमारी ठीक कर देंगे, लेकिन योग कहता है कि अपने जीवन को केवल व्यवस्थित और अनुशासित करो, बीमारी अपने आप ठीक हो जायेगी।

यौगिक दृष्टिकोण के अनुसार एक बीमार व्यक्ति को सबसे पहले यह सोचना है कि मैं बीमार नहीं हूँ। जब वह ऐसा सोचेगा तब उसका मन उसके शरीर को सकारात्मक ढंग से प्रभावित करेगा। यदि कोई व्यक्ति बार-बार यह सोचते रहे कि मैं बीमार हूँ, मुझे यहाँ दर्द हो रहा है, मुझे यह तकलीफ है तो बीमार न होने पर भी वह केवल सोच-सोचकर बीमार पड़ जाएगा। इसलिये योग में पहला सिद्धांत है यह सोचना कि मैं बीमार नहीं हूँ। इस चिंतन के साथ हम योग के जिन नियमों का पालन कर अपने जीवन को व्यवस्थित और अनुशासित बनाते हैं और रोगों से मुक्ति पाते हैं, उसे योग के उपचारात्मक पक्ष के रूप में जाना जाता है।

योग का दूसरा पक्ष है स्वास्थ्यवर्द्धक। इसमें हर परिस्थिति के लिये चार, पाँच या छ: अभ्यास होते हैं जिनके अभ्यास से शरीर नीरोग और स्वस्थ बना रहता है, साथ ही आरोग्य की स्थिति और मजबूत बनती है। इस श्रेणी में विशेषकर हठयोग के अभ्यास आते हैं।

तीसरा पक्ष है निरोधक, मतलब बाहर से कोई परिस्थिति, तनाव, प्रदूषण, कीटाणु इत्यादि अगर हमारे शरीर को प्रभावित करते हैं तो हमारे शरीर में वह प्रतिरोधक क्षमता, शक्ति और सामर्थ्य होना चाहिये, जिसकी सहायता से हम उन बाह्य कारकों को शरीर को प्रभावित करने से रोक सकें। ऐसी स्थिति में बीमारी आने पर भी दस दिन के बजाय एक या दो दिन ही बीमार पड़ेंगे।

इस प्रकार शरीर से संबंधित योग के ये तीन पक्ष होते हैं। सामान्य रूप से मनुष्य को स्वास्थ्यवर्द्धक अभ्यास करने चाहिये। इनको करने के बाद जीवन में एक नियम, एक अनुशासन और एक व्यवस्था आती है। अन्यथा लोग रात को ग्यारह बजे भोजन खाते हैं, आठ-नौ बजे तक सोते रहते हैं, दस बजे उठकर योग शिक्षक को बुलाते हैं और कहते हैं मुझे यहाँ दर्द हो रहा है, आसन करा दो। बारह बजे नाश्ता

करते हैं, तीन बजे भोजन करते हैं, रात को ग्यारह बजे सोते हैं और अपने आपको ठीक रखना चाहते हैं। कीचड़ में रहकर अपने वस्त्रों को साफ रखना असम्भव है। कोयले की खदान में जाकर अपने वस्त्रों को साफ रखना चाहते हो तो यह तुम्हारी बेवकूफी है। खदान में कहीं पर भी जाओगे, वस्त्र में दाग तो लगेगा ही। संसार में जाओगे तो संसार की परेशानी को झेलना तो पड़ेगा ही। लेकिन विवेक के साथ सामना करो, घबराकर नहीं, क्योंकि जब आदमी बीमारी से घबराता है तब फिर वह अपना उपचार नहीं कर सकता है। अगर हम विवेक से काम लें तो हर प्रकार का उपचार सम्भव हो पाता है।

–29 जुलाई 2014, खुदीराम अनुशीलन केंद्र, इडेन गार्डेन्स, कोलकाता

योग सत्र की स्मृतियाँ

ज्यौति रॉय, पुणे (यौगिक अध्ययन सत्र, फरवरी-मई 2015)

सन् 2012 में दिल्ली में नौकरी छोड़ने के बाद कुछ समय कोलकाता में रही। खुद को व्यस्त रखने के लिये रेस्तोराँ भी खोला, सब कुछ बहुत अच्छा चल रहा था, लेकिन मैं खुश नहीं थी। समझ नहीं पा रही थी कि आखिर मुझे चाहिये क्या। खैर, जवाब तो मुझे मिल गया और इसके बारे में मैं अन्त में बताऊँगी कि कैसे मिला।

कोलकाता में ही मेरी मुलाकात योग सिखाने वाले कुछ लोगों से हुई जो मुंगेर से ही सीखकर गए थे। मेरे लिये योग नई चीज थी, आमतौर पर भारीभरकम मशीनों पर कसरत करके शरीर और दिमाग दोनों मशीन बन गये थे। फिर भी योग को जानने के लिये मैंने कुछ दिमागी कसरत शुरू की। इसे और ज़्यादा जानने-समझने के लिये जब मैं उनकी योग कक्षा में गई तो उस वक्त वहाँ कोई नहीं था। मैं इन्तजार करने लगी। इसी दौरान मेरी नज़र दीवार पर टंगी एक बड़े-से फोटो-फ्रेम पर गई। इस फोटो में मैं जिस व्यक्ति को देख रही थी उन्हें न तो कभी देखा था और न ही जानती थी कि ये गेरूधारी व्यक्ति आखिर हैं कौन। फिर भी मैं इस फोटो को एकटक देखे जा रही थी। पता नहीं कब और क्यों मेरे आँखों से आँसू निकलने लगे। रोते हुए मैं वापस आ गई, लेकिन उस व्यक्ति से एक जुड़ाव और एक अलग-सी ऊर्जा अपने अन्दर महसूस हो रही थी। बाद में पता चला कि फोटो वाले व्यक्ति स्वामी निरंजनानन्द हैं।

इसके बाद मैंने मुंगेर योगाश्रम आने के प्रयास शुरू कर दिये। एक बात मैं सच्चाई के साथ कहना चाहूँगी कि इस वक्त तक भी मेरे लिये गुरु शब्द अंग्रेजी के टीचर शब्द का हिन्दी अनुवाद मात्र था और गुरु या गुरुमुखी होने की बात करने वाले मेरे लिए ढोंगी। मैं समझती थी कि आधुनिक समाज में गुरु लोग आउट-डेटेड हैं, ये सब लोग नौटंकी करते हैं। खैर मेरे दिमाग में योग सीखने की धुन सवार थी, और यह भी जानना था कि हमारे समाज में पूजा-पाठ या अध्यात्म के नाम पर जो दिखावा होता है, क्या इसी तरीके से ईश्वर को खुश किया जा सकता है?

ये सारे सवाल और बाकी कूड़े-कचरे जो मैंने अपने अन्दर जमा किये थे, उन्हें लेकर जब मैं आश्रम आई तो एक-एक करके मेरे सवालों के जवाब मिलने शुरू हुए। मेरी नकारात्मकता, मेरा घमण्ड, सब धराशायी होकर टूटकर बिखरने लगे, और दो दिन बाद इन्टरव्यू के वक्त आँसुओं के रूप में निकलने लगे। पूरे इन्टरव्यू के दौरान मैं सिर्फ यही बोल पाई कि मुझे यहाँ रहने का एक मौका चाहिये। इन दो दिनों में ही मुझे एहसास हो गया था कि मुझे जो चाहिये वह यहीं मिल सकता है। यहाँ पहली बार मुझे अपने जीवन का चक्का घूमता-सा नजर आया और वह भी पूरी सकारात्मक ऊर्जा और खुशी के साथ।

धीरे-धीरे गुरु शब्द मेरे लिये सिर्फ शब्द न होकर, जीवन का आधार-सा बनता नजर आ रहा था। विश्वास हो रहा था गुरु शब्द पर। ऐसा लगता कि कोई मजबूती से मेरा हाथ थामे हुये है और इसी की कमी थी मेरे जीवन में। इसके बाद मैंने नवरात्रि के समय मंत्र दीक्षा ली और सबकी तरह मैं भी गुरु रंग में रंग गई।

अब यौगिक अध्ययन सत्र की कुछ मजेदार बातें। पहले दिन कर्मयोग में बड़ा मजा आया, दूसरा दिन ठीक-ठाक रहा, लेकिन तीसरे दिन फिर नकारात्मकता ने धर दबोचा। मन में यही ख्याल आता कि हम तो यहाँ योग सीखने आये हैं और ये लोग जानबूझकर हमसे इतना काम कराते हैं। आखिर यह इनका काम है, हमारा नहीं। लेकिन मैं भी कमर कसके आई थी, कुछ दिव्य अनुभव तो मिल ही चुके थे, फिर नकारात्मकता को कैसे अपने पास ठहरने देती। सोचा अब तक की ज़िंदगी तो अपने तरीके से जी ही रही थी, क्या मिला उससे? चलो ज़िंदगी के चार महीने आश्रम के नाम करके देखते हैं! और अब तो मेरे पास एक और ताकत थी, अपने गुरु की। नकारात्मकता की चोटी पकड़कर उसे ऐसा नचाया और फेंका कि अभी तक पता नहीं चला कि कहाँ गयी। साथ ही सकारात्मकता को अपनी झोली में मैने ठूँस-ठूँस कर इतना भरा कि चार महीनों में न तो कभी थकी और न मेरी ऊर्जा कम हुई। और इस ऊर्जा का इस्तेमाल रिखिया में भी सेवा के रूप में जम कर किया। बीच-बीच में गुरुजी के सत्संग सेवा के दौरान हुई छोटी-मोटी चोट-चपेट पर मरहम का काम करते और इसके बाद फिर से तैयार सेवा के लिये। निस्संदेह मेरे आंतरिक परिवर्तन में कर्मयोग और सेवा का

बहुत बड़ा हाथ रहा। आश्रम में जिस तरह हमें संभाला गया, रखा गया, वह तो और कहीं नहीं देखा मैंने।

सत्र के दौरान योग्य शिक्षकों की उपस्थिति में आसन-प्राणायाम-ध्यान का अनुभव अद्भुत रहा। सजगता के साथ अभ्यासों को करना, शरीर के हर अंग में प्राणों के संचार के प्रति सजग रहना अपने में बड़ा सुखद अनुभव था। यहाँ आने से पहले मैंने योगनिद्रा शब्द सुना भी नहीं था। यह इतनी शक्तिशाली विधि होती है, मुझे कभी पता नहीं चलता अगर मैं यहाँ न आती। योगनिद्रा में चेतना की गहराइयों में गोते लगाना और अच्छे-बुरे अनुभवों का सामना करना, मेरे लिए तो जैसे जादू था।

हमारे व्यक्तित्व को निखारने में यहाँ की सांस्कृतिक और कलात्मक गतिविधियों की भूमिका भी खूब रही। कभी किसी को सुंदरकाण्ड का पाठ करने के लिए बैठा दिया जाता तो कभी किसी को मंजीरे, मृदंग या हारमोनियम बजाने का मौका दिया जाता, जिसकी मधुर ध्वनियों में ज्योति-मंदिर की ज्योति और भी दिव्य प्रतीत होती। और हाँ, सबसे यादगार रही आश्रम की शालीनता से मनाई गई होली। उसमें जो रंग, जो उमंग था, बिना हुड़दंग, बिना भांग का जो नशा था, उसका क्या कहना! मैं तो लोगों के सामने गाना गाने से डरती थी, लेकिन कैसे मैं इतने सारे लोगों के सामने गा सकी, बड़ी हैरानी होती है अब सोच कर।

सत्र के अंत में हमें अपनी प्रतिभा दिखाने का मौका भी दिया गया, जिसमें कोई भी पीछे नहीं रहा। मैंने काफ़ी लंबे समय के बाद नृत्य प्रस्तुत किया। डर लग रहा था कैसे हो पाएगा यह सब। मैं तो अंतिम समय तक प्रस्तुति न देने की सोच रही थी, लेकिन सबने मेरा उत्साह बढ़ाया, और प्रस्तुति के बाद सबसे वाहवाही भी मिली। नृत्य को लेकर मेरा आत्मविश्वास जो खत्म हो गया था, यहाँ आकर उसे एकबार फिर बल मिला है।

एक और हैरानी की बात बताती हूँ। यहाँ हम सभी जिस चीज से डरते थे या जिस काम को करने में आत्मविश्वास की कमी थी, वही काम हमसे कराया जाता था। शुरू में तो बड़ा गुस्सा आता था कि आखिर कैसे इन लोगों को हमारी कमजोरियों के बारे में पता चल जाता है, लेकिन धीरे-धीरे जब हमारा डर खत्म हुआ तो आत्मविश्वास की चमक चेहरे पर साफ दिखाई देने लगी। मेरे साथ भी ऐसा ही हुआ। अपनी नौकरी के दौरान, जिसमें सिर्फ लिखने का ही काम था, मैं अपनी लेखनी को लेकर हमेशा डरी रहती थी। आत्मविश्वास बिल्कुल भी नहीं था। लेकिन यहाँ मुझे हिन्दी विभाग में काम करने का मौका दिया गया। वह भी लिखने का काम जिसमें मेरा आत्मविश्वास हमेशा से डगमगाता रहा था। लेकिन यहाँ विभाग में मुझे बहुत सहयोग मिला और मैं पूरे आत्मविश्वास के साथ अपना काम कर पाई। मुझे इतना सब कुछ देने के लिए सभी आश्रमवासियों को बहुत-बहुत धन्यवाद।

रोग का मूल– भय और नकारात्मकता

स्वामी निरंजनानन्द सरस्वती

हमारे गुरु जी कहा करते थे कि मनुष्य बीमार तब पड़ता है जब वह सोचता है कि मैं बीमार हूँ। जब मनुष्य का मन शारीरिक अवस्था को लेकर चिंतित, व्यथित और दु:खी हो जाता है, तब मनुष्य बीमार पड़ता है। वे कहते थे कि मेरे पास अगर कोई आता है और कहता है कि मुझे यह बीमारी है, मैं क्या करूँ, तो पहली बात मैं उसे यही बोलता हूँ कि 'मैं बीमार हूँ' ऐसा बोलना छोड़ दो। तुम बीमार नहीं हो, केवल एक शारीरिक परिस्थिति से गुजर रहे हो। जैसे मौसम बदलता है, कभी गर्मी होती है, कभी बारिश होती है, कभी ठण्ढ होती है, मौसम के अनुसार हम अपने वस्त्रों की, रहन-सहन की व्यवस्था करते हैं, वैसे ही जब बाह्य या आंतरिक परिस्थितियों के कारण हमारा शरीर और मन प्रभावित हो जाता है, तब हम अपने आपको कमजोर और व्याधिग्रस्त अनुभव करने लगते हैं।

गुरु जी यह भी कहा करते थे कि अगर आदमी अपने मन को अपने शरीर से अलग रख सकता है तो शरीर भले ही बीमार हो, मनुष्य कभी बीमार नहीं होगा। उनके इस संदेश को भली-भाँति समझना आवश्यक है, क्योंकि शरीर और मन, दोनों को अलग-अलग करना बहुत महत्त्वपूर्ण तथ्य है। शरीर परिस्थिति-अनुसार कष्ट को झेल रहा है, लेकिन अगर मन सोचने लग जाए कि मैं कष्ट को झेल रहा हूँ, मैं रोगग्रस्त हूँ तो मन भी बीमार पड़ जाता है। जब तक मन में स्वस्थ, सकारात्मक ऊर्जा है, शरीर में बीमारी नहीं बढ़ती है। लेकिन जिस दिन मन रोग से घबरा जाए, व्यथित हो जाए तो एक छोटी फुँसी भी तत्काल कैंसर का रूप ले सकती है।

लोग कहते हैं कि कुछ बीमारियाँ असाध्य होती हैं जैसे कैंसर, एच.आई.वी. इत्यादि, लेकिन इन सबका निदान सम्भव है। आप कैंसर को ठीक कर सकते हो, एच.आई.वी. को ठीक कर सकते हो, विषाद को ठीक कर सकते हो और अगर सही चिन्तन है, सही संकल्प शक्ति है तो आप यमद्वार से भी वापस लौट सकते हो। आप यह सब कर सकते हो। लेकिन इसके लिये अपने मन की एक स्थिति से संघर्ष करना पड़ेगा, और यह स्थिति है रोग-जनित-भय। यह मानसिक भय कैंसर, एच.आई.वी., दमा या मधुमेह से भी घातक है और इसका कोई उपचार नहीं है। इसलिए श्री स्वामीजी बार-बार कहते थे कि अगर तुम अपने मन को रोग से अलग कर देते हो तो तुम्हारे अंदर जो भय है कि मैं बीमार हो गया, मैं कमजोर हो गया, उस भय के चँगुल से तुम मुक्त हो जाओगे और बीमारी का निदान सहजता से कर सकोगे। हमने इसपर एक प्रयोग करके देखा था।

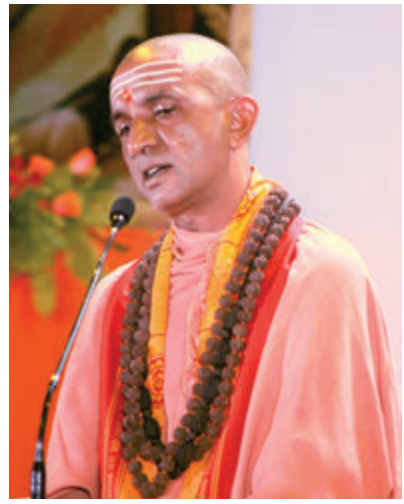

सन् 1977 में ऑस्ट्रेलिया में कैंसर रिसर्च फाउण्डेशन के प्रमुख शोधकर्ता, डॉक्टर एंस्ली मायर्स द्वारा कैंसर पर अनुसंधान किया गया। उन्होंने कैंसर के छः मरीजों को लिया। वे देखना चाहते थे कि योग द्वारा उनका उपचार हो सकता है या नहीं। डॉक्टर ने हमसे सुझाव लिया कि इनको कौन-कौन से यौगिक अभ्यास कराये जाएँ। सभी मरीजों में कैंसर की बीमारी तीसरे चरण तक पहुँच चुकी थी। हम लोगों ने उन मरीजों को पवनमुक्तासन समूह के आसन, नाड़ी शोधन और भ्रामरी प्राणायाम, योगनिद्रा तथा अजपाजप ध्यान का अभ्यास कराया। सभी कैंसर मरीजों को छः महीने तक ये चार अभ्यास कराये गए। छः महीने के अभ्यास के पश्चात् उनमें सकारात्मक परिवर्तन शुरू हो गया और आज वे पूर्णतया कैंसर से मुक्त हैं, स्वस्थ हैं। सन् 1977 में जो चिकित्सक उनका उपचार कर रहे थे, उनकी मृत्यु हो चुकी है, लेकिन कैंसर के वे मरीज जीवित और स्वस्थ हैं!

अब प्रश्न उठता है कि ये जो चार प्रकार के अभ्यास उनको बतलाए गए उनसे वास्तव में हुआ क्या? योगनिद्रा में उनको हर प्रकार के तनाव से मुक्ति मिली। उनमें जो चिन्ता थी, भय था, आशंका थी कि मुझे कैंसर है, मैं मर जाऊँगा, पता नहीं कितने दिन मुझे जीना है, कितने दिन कष्ट उठाना पड़ेगा, यह सब योगनिद्रा और संकल्प के माध्यम से दूर हो गया। जब मन भयमुक्त हो गया तब ध्यान के अभ्यास से उस मन की शक्ति को अजपाजप में मंत्र एवं श्वास के द्वारा बढ़ाया गया। मन को शक्ति मिली और जब मन को शक्ति मिलती है तब मन अपने आप शरीर को ठीक करना आरम्भ कर देता है। प्राणायाम के जटिल अभ्यास नहीं, केवल दो सरल अभ्यास कराए गए—नाड़ी शोधन और भ्रामरी। इन अभ्यासों ने उनके भीतर ऊर्जा को बढ़ाया, मतलब प्राणशक्ति जागृत हुई। पवनमुक्तासन के अभ्यासों से शरीर में प्राणों का संचार ठीक ढंग से होने लगा। इस प्रकार छः महीने में इन कैंसर मरीजों में सकारात्मक परिवर्तन शुरू हुआ और तीन-चार साल में वे एकदम स्वस्थ हो गये। आज उनकी उम्र अस्सी से भी ज्यादा हो चुकी है और उनमें तीसरे चरण के कैंसर का कोई लक्षण नहीं है।

यह एक उदाहरण है उपचार का। और उपचार किसको कहते हैं? उप मतलब समीप आना और आचार का अर्थ है अपनी दिनचर्या और जीवनशैली को व्यवस्थित

करना। तो उपचार का मतलब अपने मन और शरीर को व्यवस्थित करना, असंतुलन को दूर करने का प्रयास करना, जीवन के व्यवहारों को समझकर अपने आपको उनके अनुसार समायोजित करना।

यौगिक उपचार की शुरुआत होती है भय के निराकरण से। उपचार के दूसरे चरण में, मतलब भय को हटाने के पश्चात् प्राणों को जागृत करने का प्रयास किया जाता है। जब प्राण जागृत होते हैं, प्राणों की मात्रा में वृद्धि होती है, तब शरीर में शुद्धिकरण और कोशिकाओं के पुनर्निमाण की प्रक्रिया प्रारम्भ होती है।

यह मैंने केवल एक उदाहरण दिया कि आप भी अपने भय को निकालकर अपने चिकित्सक स्वयं बन सकते हैं। सामान्यत: ऐसा होता है कि लोग एक फुँसी को देखकर ही घबरा जाते हैं। तुरन्त आशंका हो जाती है कि क्या हो गया मुझे। मन चिंता में पड़ जाता है। जितना आप उसके बारे में सोचोगे, उतना आपका ध्यान वहाँ जाता है, उतनी आपकी मानसिक ऊर्जा वहाँ जाती है और उतना वह बढ़ता है। तो सबसे पहले भय को दूर करो और उसके बाद फिर प्राणों को जगाओ।

योग उपचार में आपको सभी आसनों को करने की आवश्यकता नहीं है। शिक्षक जो उपयुक्त अभ्यास आपको बताये केवल उतना करो। और प्रतिदिन सोने के पूर्व अपने मन को तनावमुक्त करो। अच्छे स्वास्थ्य के दो लक्षण बताये गये हैं, अच्छी नींद का आना और भोजन का अच्छे ढंग से पचना। जब नींद अच्छी आती है और भोजन अच्छे से पच जाता है तो निर्भीक रहो। लेकिन जब रात को नींद नहीं आती है, करवट बदलते रहते हो, तब इसका मतलब आप बीमार हो। तनाव के कारण मन में जो भय है वही वह बीमारी है जिसने आपकी शारीरिक स्थिरता और संतुलन को बिगाड़ दिया है। जब आपकी शारीरिक स्थिरता और संतुलन बिगड़ जाते हैं तब आप लोग उसको बीमारी कहते हो, लेकिन इसका मूल कारण है मन में बैठा भय। अपने मन को शरीर से अलग कर लोगे तो भय भी तुमसे अलग हो जाएगा मतलब भाग जाएगा। यह योग उपचार का सबसे मौलिक सिद्धान्त है।

हमारे गुरु जी ने इसी सिद्धान्त को एक व्यावहारिक रूप दिया है। वे कहते थे कि अगर आप स्वयं अपने ही घर में, अपनी जीवनचर्या और जीवनशैली में थोड़ा-थोड़ा परिवर्तन और सुधार ला सकते हो, तो योग करने की भी आवश्यकता नहीं है। उस परिवर्तन और सुधार में जो मुख्य बातें हैं मैंने आपको बतला दी हैं। रात को सोते समय अपने आपको तनावमुक्त करना, यह बहुत आवश्यक है, क्योंकि तनाव की स्थिति में ही भय, असुरक्षा, चिंता और अवसाद होता है। जितने भी नकारात्मक विचार हैं, उन्हें तनाव की स्थिति में बल मिलता है, शक्ति मिलती है। वे और अधिक मजबूती से हमें पकड़ लेते हैं। लेकिन दिक्कत यही है कि जब कुछ बुरा होता है तब हमारा पूरा मन, हमारा पूरा ध्यान उस बुराई की तरफ चला जाता है। यहाँ पर आपको अपना थोड़ा दिमाग लगाना होगा।

हम आपसे एक प्रश्न पूछते हैं। मान लीजिए आपके यहाँ दो कुत्ते हैं। एक कुत्ता है काला और दूसरा है सफेद। आप दोनों का ख्याल रखते हैं। एक दिन दोनों आपस में लड़ते हैं। कौन कुत्ता जीतेगा, काला या सफेद? आप जिस कुत्ते को ज्यादा भोजन दोगे, जिस कुत्ते का ज्यादा ख्याल रखोगे, वही कुत्ता विजय प्राप्त करेगा।

आपके भीतर का तमस्, अज्ञान, भय, असुरक्षा, अवसाद और अन्य जितनी भी नकारात्मक चीजें हैं, ये सभी आपके अंदर बैठे काले कुत्त के समान हैं। यदि आप इन सब पर ज्यादा ध्यान दोगे तो परिणाम यह होगा कि आप दिनभर चिड़चिड़े रहोगे, लोगों पर गुस्सा करोगे, द्वेष करोगे, घृणा करोगे, दूसरों को परेशान करने का प्रयास करोगे।

आपके अंदर का काला कुत्ता विजय प्राप्त करेगा क्योंकि आप उसके बारे में अधिक सोच रहे हो। सूक्ष्म रूप से आप अपनी ऊर्जा और समय अपनी नकारात्मकता को दे रहे हो, एक प्रकार से काले कुत्ते को ही खिला रहे हो। इसलिए लड़ाई में काला कुत्ता जीतेगा।

अगर आप सफेद कुत्ते को ज्यादा भोजन दोगे तो युद्ध में वह काले कुत्ते पर विजय प्राप्त करेगा। आपके अंदर जो प्रेम, करुणा, सहनशीलता, क्षमाशीलता, दयालुता, सेवा तथा सहयोग करने की भावना है, आपके अंदर जितने भी सद्गुण हैं वे सभी आपके अंदर के सफेद कुत्ते हैं। यदि आप इन सद्गुणों के विषय में चिंतन करते हैं, अपने अंदर इन गुणों को विकसित करने का प्रयास करते हैं तो आप अपने अंदर बैठे सफेद कुत्ते को खिला रहे हैं, अपने सद्गुणों को दृढ़ और मजबूत बना रहे हैं। तब लड़ाई में सफेद कुत्ता ही जीतेगा। यही दृष्टान्त अपने जीवन में अपनाकर तनावमुक्त, भयमुक्त और रोगमुक्त बनिये।

–29 जुलाई 2014, खुदीराम अनुशीलन केंद्र, इडेन गार्डेन्स, कोलकाता

वास्तविक अध्यात्म

स्वामी निरंजनानन्द सरस्वती

अध्यात्म तथा जीवन के व्यवहार, ये कभी एक-दूसरे से अलग नहीं होते। अध्यात्म और व्यावहारिक जीवन एक-दूसरे के पूरक होते हैं। इसीलिए सभी सिद्धों-महात्माओं ने सिद्धि प्राप्त करने के बाद भी संसार में सेवा रूप में कार्य किया है। उन्होंने चमत्कार नहीं दिखाया कि कैसे तुम्हारी सभी समस्याएँ छू-मंतर हो जाएँगी, बल्कि स्वयं परिश्रम करके, जनता की सेवा करके उन्हें सुख पहुँचाने का प्रयास किया है।

मनीषियों का जीवन देखने से यह बात सत्यापित हो जाती है कि आध्यात्मिकता का जीवन की व्यावहारिकता के साथ अटूट सम्बन्ध है। अध्यात्म मनुष्य को संसार से विरक्त नहीं बनाता, बल्कि जीवन की अच्छाई, जीवन की प्रतिभा को प्रकट करता है। जो पद्धति मनुष्य को संसार से विरक्त बना दे वह पद्धति समाज के हित में कभी नहीं हो सकती। संन्यास एक परम्परा है विरक्तों की, लेकिन संन्यास में भी कहा जाता है कि तुम संन्यासी बनकर अपने भीतर ज्योति प्रज्ज्वलित करो और उसके बाद चौराहे पर खड़े हो जाओ ताकि चारों तरफ से जो लोग आ रहे हैं उन्हें उस ज्योति से कुछ प्रकाश मिले। साधुओं को यह नहीं कहा गया कि तुम हिमालय की कंदराओं में जाकर साधना करो। जो साधुता को नहीं समझते हैं वही हिमालय की ओर जाते हैं क्योंकि वे सोचते हैं कि त्याग में ही उपलब्धि है। उनका त्याग वास्तव में क्या होता है, यह तो भगवान ही जानते हैं। लेकिन जो साधुता को समझते हैं वे संसार में रहकर आध्यात्मिक वृत्ति को जागृत करते हैं।

प्रकृति और ईश्वर का एक विधान है—ज्योति स्वयं को जलाकर दूसरों को प्रकाश देती है। यही योग की साधना भी है। स्वयं को जलाना ताकि हमारे भीतर की ज्योति प्रकाशित हो उठे और उस प्रकाश से दूसरे लोग अंधकार में अपना मार्ग ढूँढ सकें। योग की प्रक्रिया शरीर से शुरू होती है और अंत में मनुष्य को मनुष्य से जोड़ती है। जब मनुष्य मनुष्य से जुड़ता है तब परमात्मा उस मनुष्य के भीतर दिखलाई देने लगता है और फिर परमात्मा को कहीं और खोजने की आवश्यकता नहीं रहती।

हमारे गुरु जी कहा करते थे कि हमारी सीता, हमारी लक्ष्मी तो सड़क पर झाड़ू लगाती है, रसोई में खाना बनाती है। उनकी पूजा कौन करता है? पत्थरों की तो पूजा करने के लिये सब तैयार रहते हैं, लेकिन जो जीते-जागते देवी-देवता हमारे साथ हैं, हमारी सेवा कर रहे हैं, क्या कोई उनका ख्याल रखता है? मनुष्य में मानवता तब जागृत होगी जब वह दूसरों में उस शुद्ध ईश्वरीय तत्त्व को देख पायेगा। जब तक मनुष्य दूसरों में उस ईश्वरीय तत्त्व को नहीं देखता है, वह मानव नहीं, मात्र

संसार का प्राणी है। जिस प्रकार कीट-पतंगे जीते और मरते हैं वैसे ही उस मनुष्य की गति होगी। जब तक वह अपनी आंतरिक वृत्तियों, मनोदशाओं और भावनाओं पर संतुलन नहीं ला पाएगा, उसमें मानवता का विकास नहीं होगा, वह भी कीड़े-मकोड़ों की तरह जीयेगा और मरेगा। भारतीय चिंतन तथा दर्शन का प्राचीन काल से यही क्रम रहा है।

अपनी यात्रा शारीरिक आरोग्य के संकल्प से शुरू करो, मानसिक शान्ति के संकल्प को लेकर आगे बढ़ो और परमात्मा के, उच्च चेतना के अस्तित्व को सभी प्राणियों में देखने का प्रयास करो। तभी तुम्हारी मानवता जगेगी अन्यथा नहीं। इसीलिये भारत के मनीषियों ने सब कुछ कहने के बाद, सभी ग्रंथ और शास्त्र लिखने के बाद, सब कुछ सिखा देने के बाद अंत में कहा है– *आत्मदीपो भव* अर्थात् अब जिम्मेदारी तुम्हारी है कि तुम अपने जीवन में स्वयं एक दीप बनकर प्रकाशित हो जाओ।

मनीषियों द्वारा बतलाया गया यह चिंतन हमारे जीवन में एक संस्कृति और संस्कार का निर्माण करता है। संस्कृति की परिभाषा देते हुए कहा गया है– *सम्यक् कृतेन इति संस्कृतिः*, अर्थात् मनुष्य जीवन की सभी अभिव्यक्तियाँ जब सम्यक् रूप से होने लगें तो वह संस्कृति कहलाती है। केवल नृत्य, संगीत या कला ही संस्कृति नहीं कहलातीं। ये जीवन की अभिव्यक्तियाँ हैं। यदि ये अभिव्यक्तियाँ जीवन के उत्थान में सहायक होती हैं और जीवन में सम्यकता लाती हैं, तब उस स्थिति को कहते हैं संस्कृति। पचास साल पहले हमारे गुरु जी ने घोषणा की थी कि योग भविष्य की संस्कृति है। आज पचास साल बाद हम लोग कह सकते हैं कि हाँ, योग हमारे जीवन की संस्कृति बन सकती है, क्योंकि इससे हमारे जीवन का उत्थान सम्भव है।

अध्यात्म और जीवन की व्यावहारिकता में जो अटूट संबंध है उसका का एक जीवंत उदाहरण रहा है रिखियापीठ, जिसकी स्थापना हमारे गुरु जी द्वारा की गई है। वहाँ भारतीय मनीषियों और स्वयं अपने गुरु जी द्वारा बतलाए गए आत्मभाव और आत्मदीपो भव जैसे सिद्धांतों को अपने व्यावहारिक जीवन में आत्मसात् करने का प्रयास किया जाता है। इन प्रयासों के परिणामस्वरूप अध्यात्म और जीवन सम्बन्धी चिंतन और दर्शन वास्तव में चरितार्थ हुआ है। इसी के आधार पर रिखियापीठ की गतिविधियों का निर्धारण किया गया है।

रिखियापीठ में हमलोग इस साल के सितम्बर महीने से अगले सितम्बर तक अपने गुरु जी के आगमन की रजत जयंती मना रहे हैं। सालभर प्रत्येक माह में अनेक प्रकार के आयोजनों का निर्णय लिया गया है। उनमें से एक है आसपास के ग्रामीण लोगों के लिये चिकित्सा सुविधा उपलब्ध कराना। इसमें मेडिकल जाँच, चिकित्सा और जरूरत पड़ने पर सर्जरी की निःशुल्क व्यवस्था की गई है।

दूसरा कार्यक्रम है वहाँ के बच्चों को व्यावसायिक प्रशिक्षण देना। इसमें बढ़ईगिरी, बिजली का काम, सिलाई-बुनाई और चित्रकला जैसी चीजें शामिल होंगी। तीसरा कार्यक्रम है बच्चों को संगीत और नृत्य जैसी ललित कलाएँ सिखलाना। चौथा कार्यक्रम है आध्यात्मिक चिंतन और सत्संग। हठयोग, राजयोग या कर्मयोग पर सत्संग नहीं बल्कि उन विषयों पर जो मनुष्य के जीवन में गुणात्मक परिवर्तन लाते हैं।

ये चार प्रकार के कार्यक्रम हर महीने वहाँ पर संचालित होने जा रहे हैं। इसमें सभी प्रकार के शिक्षण और प्रशिक्षण की व्यवस्था वहाँ के बच्चों को बिना किसी शुल्क के उपलब्ध कराई जाती है। 23 सितम्बर 1989 को हमारे गुरु जी रिखिया पधारे थे, और इस वर्ष की इसी तारीख से हम लोग अपना रजत जयंती कार्यक्रम आरम्भ कर रहे हैं।

रिखियापीठ की सभी गतिविधियाँ हमारे गुरु जी के चिंतन और संदेश का मूर्त रूप हैं। सेवा का यह जो रूप है, वह चैरिटी या खैरात नहीं है, बल्कि आत्मभाव का एक प्रत्यक्ष उदाहरण है।

आखिर साधु का क्या काम होता है? क्या साधु का काम केवल धर्म और दर्शन की शिक्षा देना है? या उसे लोकोत्थान में भी सहयोग देना है? जिस कार्य के लिए हमारे गुरु जी ने हमें प्रेरित किया है, वह परमार्थ और आत्मभाव से जुड़ा है। उसमें सहयोग और सेवा के बदले कोई कुछ पाने की अपेक्षा नहीं करता।

हमारे गुरु जी कहते थे, 'देखो, मैं मोक्ष नहीं चाहता, मैं भगवद् दर्शन भी नहीं चाहता, न ही मैं समाधि चाहता हूँ। मेरे जीवन में मात्र एक ही कामना कि

भगवान मुझे संन्यासी बनाकर बार-बार इस धरती पर भेजें और मेरे जन्म लेने का केवल एक ही प्रयोजन हो, मैं सभी लोगों की आँखों से दु:ख के आँसू पोंछ सकूँ।' वे यह भी कहते थे कि मेरे संन्यासियों का भी एकमात्र यही प्रयोजन होना चाहिये। इस पर कौन कितना खरा उतरता है, यह तो भविष्य ही बतायेगा, लेकिन उनका यही संदेश और निर्देश था कि संन्यासी अपने मोक्ष के लिये नहीं, बल्कि समाज में ईश्वरत्व को जगाने के लिये काम करता है। यही हमारे गुरु जी का संकल्प रहा है।

हमारे गुरु जी के पहले संकल्प का परिणाम है गंगादर्शन योगपीठ जो पहले से ही मुंगेर में है। रिखियापीठ हमारे गुरु जी के दूसरे संकल्प का मूर्त रूप है। यह संकल्प है आत्मभाव से युक्त होकर सेवा, प्रेम तथा दान के माध्यम से वेदान्त को अपने जीवन में स्थापित करना। समाधि के पूर्व उन्होंने हमें तीसरा संकल्प दिया संस्कार का, जिसका केन्द्र होगा संन्यासपीठ, मुंगेर जो अभी निर्माणाधीन है। वहाँ पर स्वयं को परिवर्तित करने की, अपने जीवन को थोड़ा व्यवस्थित और समायोजित करने का प्रशिक्षण दिया जाएगा।

ये तीन संकल्प रहे हैं हमारे गुरु जी के। अगर आप इन संकल्पों को अपने जीवन में अंशमात्र भी स्थान दे सकते हैं तो फिर हम निश्चित रूप से मानवता के लिये एक उज्ज्वल भविष्य की कामना कर सकते हैं। नहीं तो आपके एयरकण्डीशंड बंगलों के बाहर अशांति, अराजकता और अभाव की जो अग्नि जल रही है वह एक दिन आपके बंगले को भी जला सकती है। आप अपने एयरकण्डीशंड बंगले में आराम से बैठे हो और कहते हो कि यह बंगला सुरक्षित है। लेकिन जो अग्नि समाज में फैल रही है, क्या वह आपके बंगले को सुरक्षित रखेगी? किसी दिन अपनी चपेट में लेकर उसे भस्म कर देगी।

हमें अपने एयरकण्डीशंड बंगले में छुपकर नहीं बैठना है, बल्कि एक प्रयास करना है इस अग्नि को शान्त करने के लिए। हमें चिंतन करना है कि किस प्रकार इसे शांत करने के लिए हम पानी डाल सकते हैं। समाज में व्याप्त अग्नि को शान्त करने के लिये हमें फायरमैन का काम करना पड़ेगा, और फायरमैन एक योगी ही बनता है।

इसीलिए गीता में श्रीकृष्ण ने अर्जुन से बार-बार कहा है– *तस्मात् योगी भवार्जुन*। इसी उद्घोष को मैं फिर से दोहरा रहा हूँ, इसलिए नहीं कि तुम संसार से मुक्त हो जाओ, बल्कि इसलिए कि तुम अपने संसार को सुन्दर बना सको। मोक्ष हमारे जीवन की आध्यात्मिकता नहीं है, बल्कि वह प्रयास जो हमारे संसार, समाज, परिवार और साथ-ही-साथ हमें भी सुन्दर बना सके, सत्यम् और शिवम् का बोध दिला सके, वही हमारे जीवन की वास्तविक आध्यात्मिकता है।

–27 जुलाई 2014, रंगमंच हॉल, स्वभूमि हेरिटेज प्लाज़ा, कोलकाता

कल्पतरु की छाँव में

स्वामी निरंजनानन्द सरस्वती

वैराग्य और उदासीनता में क्या अंतर है?

वैराग्य को समझने के लिए पहले राग को जानना जरूरी है। राग जीवन का स्वाभाविक कर्म है। जब हम किसी अच्छी वस्तु, व्यक्ति या पदार्थ को देखते हैं, तब राग के कारण ही हम उस वस्तु, व्यक्ति या पदार्थ की ओर आकर्षित हो जाते हैं। मतलब सौन्दर्य, अच्छाई या लाभ के प्रति जो आकर्षण होता है उसे राग कहते हैं। राग ही सुख की कामना उत्पन्न करता है। सुख तथा राग दोनों जब साथ हो जाते हैं, तब आसक्ति उत्पन्न होती है, बंधन का निर्माण हो जाता है। मतलब आप भौतिक सम्मोहन की अवस्था में आ चुके हो।

राग के कारण सुख प्राप्त करने की जो कामना उत्पन्न होती है यदि उसकी पूर्ति नहीं होती है तब मन खिन्न हो जाता है और मन की इस स्थिति को कहते हैं उदासीनता। लेकिन वैराग्य में मन खिन्न नहीं होता है, बल्कि हर परिस्थिति में प्रसन्न, उत्साहपूर्ण तथा सकारात्मक रहता है। वैराग्य में मन बिल्कुल भी निराश नहीं होता, जबकि उदासीनता में निराशा के अंश दिखलाई देते हैं।

सामान्य रूप से लोग वैराग्य को त्याग से जोड़ देते हैं। अगर किसी ने घर-परिवार छोड़ दिया तो कहते हैं कि वैरागी हो गया। लेकिन वैराग्य का मतलब है

कि राग रहे, परंतु राग के परिणाम से तुम अप्रभावित रहो। राग भले ही तुम्हारे चारों ओर रहे, लेकिन उस राग के बंधन में तुम नहीं बंधते। यही इसका असली अर्थ है।

बच्चों के समुचित विकास के लिए क्या करना चाहिए?

बच्चों के समुचित विकास के लिए उनके अभिभावकों को बच्चों के लिए सही अवसर और सही वातावरण, दोनों की व्यवस्था करनी चाहिए और उनपर अपनी महत्त्वाकांक्षाएँ आरोपित नहीं करनी चाहिए।

प्राय: अभिभावक अपने बच्चों पर अपनी महत्त्वाकांक्षाएँ आरोपित कर देते हैं। बच्चों की अपनी कोई महत्त्वाकांक्षा नहीं होती, वे तो सिर्फ खेलना-कूदना चाहते हैं, अपने मित्रों के साथ समय बिताना चाहते हैं, लेकिन अभिभावक कहते हैं कि बेटा, तुम्हें बड़े होकर यह बनना है, वह बनना है। डॉक्टर कहता है कि बेटा, तुम बड़े होकर डॉक्टर बनो, ताकि मैंने जो क्लिीनिक खोला है उसे तुम चला पाओ। इंजीनियर कहता है कि बेटे बड़े होकर इंजीनियर बनना, मैं तुम्हें मदद कर सकता हूँ। मतलब जो जिस प्रोफेशन में है, उसी प्रोफेशन में अपने संतान को आगे बढ़ने के लिये प्रेरित करता है। वह यह भूल जाता है कि संतान का भी अपना एक प्रारब्ध है। अभिभावक का कर्तव्य इतना ही है कि वह बच्चे की शिक्षा और उसके संस्कार के लिये जिम्मेदार रहे।

हमने यहाँ तीन चीजें कही हैं। पहली है शिक्षा, शिक्षा के लिये उचित व्यवस्था और अवसर प्रदान करना। दूसरा है संस्कार, मतलब अच्छे संस्कार के लिये व्यवस्था और अवसर उपलब्ध करना। तीसरा है प्रारब्ध या भाग्य। हर बच्चा अपना भाग्य लेकर आता है, लेकिन हम उसपर अपनी महत्त्वाकांक्षाओं को आरोपित करने का प्रयास करने लगते हैं, अपनी महत्त्वाकांक्षाओं को सिद्ध करने के लिये उसे ढकेलते भी हैं, उस पर दबाव भी डालते हैं। ऐसे में बच्चे की अपनी प्रतिभा जागृत नहीं हो पाती है। बच्चा जिस ढाँचे को लेकर आया है, उसमें उसको ढलने नहीं देते हो, बल्कि उसे अपने ढाँचे में ढालना चाहते हो।

शिक्षा के लिये तो आप व्यवस्था कर देते हैं। बच्चा स्कूल जाता है, फिर बड़ा होने के बाद कॉलेज भी जाता है। आप उसके लिए पर्याप्त धन की व्यवस्था कर देते हैं। लेकिन क्या आप उसके संस्कारों के विकास के लिये कोई व्यवस्था करते हैं, कोई अवसर उपलब्ध कराते हैं? यहीं पर प्राय: सभी अभिभावक गलती करते हैं, चूक करते हैं। अभिभावक अपने बच्चों के बारे में कहते हैं कि मैंने उन्हें पढ़ाया-लिखाया, अमेरिका भेजा, इंग्लैंड भेजा, डिग्री दिलाई, लेकिन वे बिगड़े हुए वापस आये हैं। ऐसा क्यों? इसलिए कि आपने उन्हें संस्कार नहीं दिया है। उन्होंने न तो विद्यालय में, न अपने मित्रों से और न आपके अपने घर में संस्कार को पाया है।

यहाँ पर अभिभावक अपने कर्तव्य का निर्वाह ठीक ढंग से नहीं कर पाते हैं। सोचते हैं कि शिक्षा ही पर्याप्त है, संस्कार की आवश्यकता नहीं है। लेकिन इस बात को ध्यान में रखना आवश्यक है कि बहुत पढ़ा-लिखा व्यक्ति भी अच्छे संस्कारों के अभाव में पशु के समान बर्ताव करने लगता है। दूसरी ओर कोई व्यक्ति अशिक्षित है, लेकिन उसके जीवन में संस्कार हैं तो वह एक सभ्य इंसान की तरह व्यवहार करता है।

हम अपनी बात बतलाते हैं। हमें शिक्षा जगत् की कोई डिग्री नहीं मिली है, अगर कोई डिग्री मिली है तो संस्कार की। हमने किसी विषय में न तो पी.एच.डी. की है, न स्नातकोत्तर की डिग्री ली है और न ही स्नातक की। लेकिन हमें संस्कार मिला है जिसके बल पर हम आज अपने पैरों पर खड़े होकर आप लोगों के चेहरे पर मुस्कान ला सकते हैं। हमें यदि इन संस्कारों के स्थान पर केवल शिक्षा मिली होती तो हो सकता है कि हम भी अपनी महत्त्वाकांक्षाओं में फँसकर, धक्के खाते नजर आते।

अगर परिवार, समाज तथा राष्ट्र में व्यवस्था और शान्ति चाहिये, तो इसके लिये हमें प्रयास करना होगा कि हम शिक्षा के साथ संस्कार भी अपने बच्चों को दें। वर्तमान समय में हमारा विकास असंतुलित है, वह समग्र या सर्वांगीण विकास नहीं है। एक तरफ तराजू भारी हो रहा है, दूसरी तरफ खाली। अब दूसरी तरफ भी भरने की आवश्यकता है।

संस्कारों की वजह से ही आज हमारे भारत की संस्कृति जीवित है। बंगाल में तो संस्कार के बारे में बतलाने की कोई आवश्यकता नहीं है, क्योंकि बंगाल संस्कृति का एक प्रमुख केन्द्र रहा है और आज भी है। यहाँ अनेकों प्रकार की क्रान्तियाँ हुई हैं। केवल राजनैतिक और सामाजिक ही नहीं बल्कि आध्यात्मिक भी। आखिर भक्ति की क्रान्ति भी बंगाल से शुरू हुई थी, चैतन्य महाप्रभु के द्वारा। पण्डित रवीन्द्रनाथ ठाकुर द्वारा ज्ञान की क्रान्ति भी यहाँ से शुरू हुई जिससे आज पूरा विश्व प्रभावित है।

यह क्षेत्र पूर्व काल से एक सजग, जाग्रत क्षेत्र रहा है, लेकिन बुरा नहीं मानना, अभी बंगाली लोग सो रहे हैं। जब हनुमान जी सोये थे तो उनको जगाने के लिये जाम्बवन्त की आवश्यकता पड़ी थी। यह बतलाने के लिये कि आप में समुद्र लांघने का सामर्थ्य है, शक्ति है। और जब बंगाल के लोग सोते हैं तो उन्हें स्वामी निरंजन की आवश्यकता पड़ती है यह बतलाने के लिये कि आपके जीवन में जो संस्कृति और संस्कार हैं, उन्हें जागृत करने के लिये अपनी अगली पीढ़ी को एक अवसर देना है। केवल शिक्षा से काम नहीं चलेगा। और यह काम हर अभिभावक को करना है। यह किसी साधु-संन्यासी या सरकार का काम नहीं है। यह हर अभिभावक की जिम्मेदारी है। नहीं तो आप अधूरे व्यक्तित्व को जन्म देकर उसे अपना उज्ज्वल

भविष्य नहीं मान सकते हो। अगर आप वाकई अपने लिये, अपने समाज तथा राष्ट्र के लिये उज्ज्वल भविष्य की कामना करते हैं तो शिक्षा के साथ संस्कार जरूर देना।

कई महीनों के अभ्यास से जब ध्यान में एकाग्रता आती है तब नाक में छींक आती है जिसे मैं रोक नहीं पाता हूँ। कृपया मार्गदर्शन दीजिये।

यह आपके शरीर का प्राणिक व्यवहार है। हमारे शरीर में पाँच मुख्य प्राण हैं और पाँच उपप्राण। मुख्य प्राण के अंतर्गत प्राण, अपान, समान, उदान और व्यान आते है जो शरीर के विभिन्न अंगों को नियन्त्रित एवं संचालित करते हैं। फिर कूर्म, कृकर, देवदत्त, धनंजय आदि जैसे उपप्राण भी हैं जो सूक्ष्म शरीर की क्रियाओं-प्रतिक्रियाओं को नियन्त्रित करते हैं। जैसे पलकों का झपकना एक प्राणिक अभिव्यक्ति है। ध्यान करते-करते बहुत बार लोग अनुभव करते होंगे कि आँखों की पुतली बहुत तेजी से चलने लगती है और तब बहुत भटकाव होता है। छींक आना भी एक प्राणिक अभिव्यक्ति है जो मुख्य रूप से शरीर में किसी विशेष प्राणिक असंतुलन का दर्शाता है।

इस प्रकार के किसी भी प्राणिक असंतुलन को प्राणायाम के अभ्यास द्वारा नियंत्रित किया जा सकता है। ध्यान के पहले अगर आप पाँच मिनट नाड़ी शोधन जैसा प्राणायाम कर लेंगे और उसके बाद ध्यान का अभ्यास करें तो फिर यह परिस्थिति उत्पन्न नहीं होगी।

–27 जुलाई 2014, रंगमंच हॉल, स्वभूमि हेरिटेज प्लाज़ा, कोलकाता

मधुर मुस्कान

मैं बाल योग मित्र मंडल की एक 13 वर्षीय सदस्या, मुस्कान कुमारी हूँ। मैं कक्षा आठ की छात्रा हूँ। गर्मियों की छुट्टी में मैंने दो सप्ताह के लिए आश्रम में प्रवास किया। आश्रम प्रवास के दौरान मैं सबको सेवा करते देख बहुत खुश होती थी, पर कभी-कभी उनके चेहरे पर तनाव की लकीरें मेरे को हतोत्साहित कर देती थीं। उन लोगों के लिए मैंने यह कविता लिखी–

मुस्कान की मुस्कान से,
मुस्कुराते रहो,
मुस्कान के साथ मिल,
जीवन के गीत गाते चलो।
मुस्कान ही तेरे जीवन की
सच्ची साथी है,
मुस्कान के बिना,
जीवन तेरा यह बाकी है।
मुस्कान न हो तो,
जीवन का आनंद कैसा,
खुशियों का चहकना,
मुस्कान बिन हो भी कैसा?
सत्य अंकित न हो जीवन में,
तो मुस्कान कैसा,
बिन मुस्कान की इस सृष्टि का
आविष्कार कैसा?

मुस्कान तुम्हारी हर चाल में हो,
मुस्कान तुम्हारे हर हाल में हो,
मुस्कान जीवन के कण-कण में,
मुस्कान जीवन की हर आवाज में हो!

योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट

दिग्गज

पृष्ठ 24

श्री स्वामी शिवानन्द सरस्वती तथा श्री स्वामी सत्यानन्द सरस्वती को समर्पित सत्यम् गाथाएँ उनकी आध्यात्मिक एवं यौगिक शिक्षाओं को सरल, रोचक ढंग से दुनियाभर के लोगों तक पहुँचाने का माध्यम हैं।

दिग्गज कहानी है विनायक नामक हाथी की जो बचपन से अपने हृदय में एक स्वप्न संजोये है। परिस्थितिवश वह अपनी स्वतंत्रता खो बैठता है और गुलामी की जिन्दगी जीते हुए एक क्रोधी, प्रतिशोधी हाथी बन जाता है। उसके जीवन का यह नकारात्मक दौर तब बदलता है जब 'दिग्विजयी' उसके जीवन में प्रवेश कर उसका कायाकल्प कर देते हैं। विनायक को नवजीवन प्राप्त होता है और अपने अंतिम क्षणों में वह दिग्गज बनने के चिरभिलषित स्वप्न को साकार कर लेता है।

उपलब्ध

पुस्तकों की मूल्य सूची एवं क्रयादेश प्रपत्र प्राप्त करने के लिए सम्पर्क करें–
योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट, गंगा दर्शन, फोर्ट, मुंगेर, बिहार 811201

दूरभाष : 91-6344-222430, 6344-228603, 09304799615 फैक्स : 91-6344-220169

जवाब के लिए अपना पता लिखा, डाकटिकट लगा लिफाफा भेजें, अन्यथा आपके आवेदन पर विचार नहीं किया जाएगा।

सत्यानन्द योग वेबसाइट

www.biharyoga.net

यह बिहार योग पद्धति की मुख्य वेबसाइट है जिसमें सत्यानन्द योग, बिहार योग विद्यालय, बिहार योग भारती, शिवानन्द मठ, सीता कल्याणम् महोत्सव तथा योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट सम्बन्धी जानकारियाँ उपलब्ध हैं।

www.rikhiapeeth.in

यह वेबसाइट सभी साधकों के लिए स्वामी शिवानन्द जी की 'सेवा, प्रेम और दान' की मौलिक शिक्षाओं से जुड़े रहने का सुगम साधन है। यहाँ रिखियापीठ की गतिविधियों, कार्यक्रमों और सत्रों की जानकारी के अतिरिक्त प्रेरक सत्संग भी उपलब्ध हैं।

'यौगिक जीवन' स्वामी निरंजन के संग

www.biharyoga.net/living-yoga/ पर श्री स्वामी सत्यानन्द सरस्वती के उत्तराधिकारी स्वामी निरंजनानन्द सरस्वती के मिशन सम्बन्धी लेख, संदेश एवं समाचार उपलब्ध हैं।

www.yogamag.net

योगा पत्रिका की इस आधिकारिक वेबसाइट पर पिछले तीस वर्षों की प्रतियों का संग्रह है। इस निरंतर वर्धमान संग्रह में विभिन्न श्रेणियों की खोज सुविधा भी उपलब्ध है।

आवाहन वेबसाइट

www.biharyoga.net/sannyasa-peeth/avahan/ पर संन्यास पीठ की द्वैमासिक पत्रिका, *सत्य का आवाहन* उपलब्ध है, जिसमें श्री स्वामी शिवानन्द, श्री स्वामी सत्यानन्द एवं स्वामी निरंजनानन्द की शिक्षाओं तथा संन्यास पीठ की गतिविधियों की जानकारी है।

- Registered with the Department of Post, India
  Under No. HR/FBD/298/13-15
  Office of posting: BPC Faridabad
  Date of posting: 1st-7th of every month
- Registered with the Registrar of Newspapers, India
  Under No. BIHHIN/2002/6306

issn 0972-5725

bar code

गंगादर्शन के सत्र एवं कार्यक्रम 2015

अगस्त 2015-मई 2016	योग अध्ययन में डिप्लोमा (अँग्रेजी)
अगस्त 4-30	योग अनुदेशक सत्र (अँग्रेजी)
सितम्बर 8	स्वामी शिवानन्द जन्मोत्सव
सितम्बर 12	स्वामी सत्यानन्द संन्यास दिवस
अक्टूबर 1- जनवरी 25	चातुर्मासिक योग अध्ययन सत्र (अँग्रेजी)
अक्टूबर 3-20	योग स्वास्थ्य रक्षा सत्र-मधुमेह (हिन्दी)
दिसम्बर 25	स्वामी सत्यानन्द जन्मदिवस
प्रत्येक शनिवार	महामृत्युंजय हवन
प्रत्येक एकादशी	भगवद् गीता पाठ
प्रत्येक पूर्णिमा	सुन्दरकाण्ड पाठ
प्रत्येक 5 एवं 6 तारीख	श्री स्वामी सत्यानन्द जी की महासमाधि का स्मरणोत्सव
प्रत्येक 12 तारीख	अखण्ड रामचरितमानस पाठ

आश्रम में मोबाइल फोन लाना वर्जित है। अपना मोबाइल फोन कदापि अपने साथ न लाएँ।

उपर्युक्त सत्रों/ कार्यक्रमों के सम्बन्ध में विशेष जानकारी के लिए सम्पर्क करें-

बिहार योग विद्यालय, गंगादर्शन, मुंगेर, बिहार 811201

फोन : 06344-222430, 06344-228603, 9304799615 फैक्स : 06344-220169

वेबसाइट : www.biharyoga.net

✉ अन्य किसी जानकारी हेतु अपना पता लिखा और डाक टिकट लगा हुआ लिफाफा भेजें, जिसके बिना उत्तर नहीं दिया जायेगा।